निराला के ा-साहित्य में सामाजिक चेतना

(एम. फिल. की उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)
सन् 1984

निर्देशक :
डा० सोम प्रकाश सुधेश

शोध छात्रा
मीना रानी

भारतीय-भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
1984

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
भारतीय भाषा केन्द्र

न्यू मदरौली रोड़
नई दिल्ली-110067

दिनांक 17-7-1984

प्रमाणित किया जाता है कि मीना रानी द्वारा प्रस्तुत "निराला के कथा-साहित्य में सामाजिक चेतना" शीर्षक लघु-शोध-प्रबंध में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य किसी विश्वविद्यालय में इससे पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है। यह सर्वथा मौलिक है।

18/7/84

(डा० नामवर सिंह)
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

(डा० सोम प्रकाश सुधेश)
निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
० भूमिका		क - घ
० प्रथम अध्याय	: पृष्ठभूमि	1 - 25
	: (क) हिन्दी कथा-साहित्य की परंपरा	1 - 8
	: (ख) सामाजिक चेतना का आशय	9 - 14
	: (ग) युगीन परिवेश	14 - 25
० द्वितीय अध्याय	: निराला के कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिचय	26 - 68
० तृतीय अध्याय	: निराला के कथा-साहित्य में सामाजिक चेतना के विविध पक्ष	69 - 117
	: (क) आर्थिक पक्ष	69 - 79
	: (ख) राजनीतिक आयाम	79 - 89
	: (ग) सामाजिक समस्याएँ	89 - 105
	: (घ) सांस्कृतिक पक्ष	106 - 117

० चतुर्थ अध्याय	: सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के स्वरूप	118 - 149
	: (क) व्यंग्य की प्रखरता	118 - 124
	: (ख) विद्रोही स्वर	124 - 130
	: (ग) औपन्यासिक शिल्प में परिवर्तन	130 - 138
	: (घ) कहानी-शिल्प में नवीनता	138 - 143
	: (ङ) भाषा	143 - 149
० पंचम् अध्याय	: उपसंहार	150 - 161
० ग्रंथानुक्रमणिका		162 - 165

—

भूमिका

भूमिका

हिन्दी काव्य-जगत को निराला की देन अमूल्य है, यह सर्वमान्य हो चुका है। पर निराला ने श्रेष्ठ काव्य-सर्जन के साथ-साथ उच्च-कोटि की कुछ कहानियाँ एवं उपन्यासों की भी रचना की है, जिनका हिन्दी के कथा-साहित्य में अपना एक विशिष्ट महत्व है और निश्चय ही निराला-साहित्य का यह अंग अपने सम्यक् मूल्यांकन के लिए स्वतंत्र विवेचन की अपेक्षा रखता है। वस्तुतः निराला के काव्य-सर्जन के समानान्तर ही उनका कथा-लेखन भी चलता रहा। छायावाद के एक प्रतिनिधि कवि होते हुए भी निराला ने छायावादी कल्पना-प्रकाश, भावोच्छ्वास इत्यादि की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए अपनी काव्य-कृतियों में जीवन-यथार्थ को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। इसी तरह उन्होंने इस यथार्थ को अपने कथा-साहित्य में भी समायित किया है। लेकिन जैसा कि डा० रामविलास शर्मा ने कहा है (1) "निराला के कथा-साहित्य में दो परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। एक प्रवृत्ति काल्पनिक कथावृत्ति के सपने रचने की है, दूसरी वास्तविक जीवन-संघर्ष को चित्रित करने की।" (1) कहने का मतलब यह कि निराला का कथा-साहित्य भी उनकी सर्जनात्मकता का एक उत्कृष्ट पक्ष है, जिसका अनुशीलन का उसकी महत्ता एवं विशिष्टता के प्रकाश में लाना अपेक्षित है।

निराला के काव्य-साहित्य पर तो काफी लिखा जा चुका है, लेकिन

1- डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ० 462

उनका कथा-साहित्य उस अनुपात में उपेक्षित ही रहा है। पंडित नंददुलारे वाजपेयी (कवि निराला), डा० कंचन सिंह (क्रांतिकारी निराला), डा० रामविलास शर्मा (निराला की साहित्य-साधना), गंगा प्रसाद पाण्डेय (महाप्राण निराला), दूधनाथ सिंह (निराला : आत्महंता आस्था) आदि निराला पर लिखने वाले महत्वपूर्ण समीक्षक है। लेकिन इन विद्वानों ने अपने विवेचन का केन्द्र मुख्य रूप से निराला के काव्य-पक्ष को ही बनाया है। रामविलास जी ने 'निराला की साहित्य साधना' (भाग 2) में निराला के कथा-साहित्य का कुछ विवेचन किया है, परन्तु 'साहित्य-साधना' मुख्य रूप से उनके काव्य का ही विवेचन-ग्रन्थ है। निराला के कथा-साहित्य पर छिट-पुट रूप से कुछ निबंध भी लिखे गये है। एक निबंध है कुसुम वार्ष्णेय का - 'उपन्यास-साहित्य', एक अन्य निबंध है - रामगोपाल सिंह चौहान का 'कहानी-साहित्य'। ये दोनों निबंध लोकभारती मूल्यांकन माला 'निराला' में संकलित है। ये निबंध है और निबंध की अपनी सीमाएँ होती है, फलतः इन निबंधों में निराला के कथा-साहित्य का संक्षिप्त परिचय ही देखने को मिलता है। निराला के कथा-साहित्य पर कुछ शोध कार्य भी हुए है। नरपत चंद सिंघवी का शोध-ग्रंथ 'महाकवि निराला का कथा-साहित्य' (जोधपुर विश्वविद्यालय 1968), दूसरे शिवकुमार त्रिवेदी का 'निराला-साहित्य में सामाजिक चेतना' (राजस्थान विश्वविद्यालय 1974) नाम के दो शोध-ग्रंथ है लेकिन इन्हें देखने का मौका नहीं मिला इसलिए इनके संबंध में कुछ भी कहना उपयुक्त नहीं है। इसके

अतिरिक्त बालकृष्ण गुप्त ने अपने शोध-प्रबंध 'प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास में संक्रमणशील सामाजिक जीवन का स्वरूप' (कानपुर विश्वविद्यालय ,1970 ई०) एवं अमर सिंह लोधा ने 'प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास में सामाजिक चेतना' (गुजरात विश्वविद्यालय, 1969 ई०) में प्रासंगिक रूप से निराला के कथा-साहित्य पर भी विचार किया है । निराला के कथा-साहित्य पर हुए विवेचन को अपर्याप्त देखते हुए ही इस लघु-शोध-प्रबंध का विषय 'निराला के कथा-साहित्य में सामाजिक चेतना' रखा गया है ताकि उनके कथा-साहित्य का सम्यक् विश्लेषण करते हुए उसमें व्यक्त सामाजिक चेतना को उजागर किया जा सके ।

यह लघु-शोध-प्रबंध पाँच अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में हिन्दी कथा-साहित्य की परंपरा (सामाजिक चेतना का आधार) और निराला के युगीन परिवेश का विवेचन किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में निराला के उपन्यासों और कहानियों का आलोचनात्मक परिचय दिया गया है ।

तृतीय अध्याय में निराला के कथा-साहित्य में व्यक्त सामाजिक-चेतना के विभिन्न पक्षों – आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक का विवेचन किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय निराला के कथा-साहित्य के अन्तर्वस्तु और रूप पक्ष के विवेचन से संबंधित है । इसमें निराला की व्यंग्य-कला, उनके विद्रोही स्वर, औपन्यासिक और कहानी शिल्प तथा भाषा पर विचार किया गया है ।

पंचम अध्याय उपसंहार है।

अंत में दो शब्द अपने निर्देशक डा० सुरेश के प्रति। यह शोध-ग्रंथ डा० साहब के सार्थक निर्देशन का ही परिणाम है। इसकी रूप-रेखा तैयार करने में उनकी सूझ-बूझ का महत्वपूर्ण हाथ है। वस्तुतः ऐसे कार्य के लिए धन्यवाद ज्ञापन एक औपचारिकता है, गुरुदक्षिणा का उपक्रम नहीं।

वीना रानी

भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली 110067
20 जुलाई 1984

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

(क) हिन्दी कथा-साहित्य की परंपरा

(ख) सामाजिक चेतना का आशय

(ग) युगीन परिवेश

प्रथम अध्याय

(क) हिन्दी कथा-साहित्य की परम्परा

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने जहाँ 'जुही की कली', 'बादल राग', 'सरोज स्मृति', 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास', 'अनामिका' जैसी अनेक उत्कृष्ट एवं कालजयी काव्य-कृतियों की रचना कर हिन्दी काव्य-जगत को समृद्ध किया, वहाँ उन्होंने निबंध, कहानी, उपन्यास इत्यादि के लेखन द्वारा हिन्दी-साहित्य की अन्य विधाओं को भी सजाने-संवारने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। यह अवश्य है कि हिन्दी समीक्षा जगत में अब तक निराला के कवि-रूप का अधिक विवेचन हुआ है। जिस तरह कवि के रूप में निराला ने रोमैंटिक भावबोध और युगीन यथार्थबोध दोनों का परिचय अपनी कविताओं के द्वारा दिया, उसी तरह एक कथाकार के रूप में अपने कथा-साहित्य में भी रोमैंटिक भावबोध से समन्वित यथार्थवादी चेतना का परिचय दिया है। यह सच है कि परिमाण की दृष्टि से निराला का कथा-साहित्य काव्य-कृतियों की अपेक्षा थोड़ा है परन्तु इस पक्ष का भी महत्व असंदिग्ध है। आधुनिक युग में जीवन की जटिलताएँ और समस्याएँ इतनी विविध एवं गहरी होती गयी हैं कि उनकी अभिव्यक्ति हेतु कविता अपर्याप्त विधा प्रतीत होने लगी और संभवतः यही कारण रहा है कि आधुनिक युग में कविता के साथ-साथ कहानी, नाटक, उपन्यास आदि लिखना भी श्रेष्ठ साहित्यकार आवश्यक

समझने लगे। दूसरे कि भारतेन्दु युग से पूर्व हिन्दी में गद्य का सम्यक् विकास न होने के कारण पहले के कवियों को इन गद्य-विधाओं की सुविधा उपलब्ध नहीं थी, अतः उन्हें केवल कविता पर ही निर्भर रहना पड़ता था। लेकिन हिन्दी गद्य का विकास होते ही कविता के साथ-साथ अन्य साहित्यिक विधाओं में भी अभिव्यक्ति की परंपरा भारतेन्दु-युग से ही चल पड़ी। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता, कहानी, निबंध, नाटक आदि अनेक साहित्यिक विधाओं को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर परवर्ती पीढ़ी का पथ-प्रदर्शन किया। बीसवीं सदी में जयशंकर प्रसाद, निराला, प्रेमचंद, मुक्तिबोध, अज्ञेय जैसे श्रेष्ठ लेखकों द्वारा इस परंपरा का विकास हुआ। अनेकानेक श्रेष्ठ एवं कालजयी काव्य-कृतियों के द्वारा अपनी असाधारण काव्य-प्रतिभा का परिचय देने वाले निराला का स्वयं कहना था कि (गद्य जीवन-संग्राम की भाषा है।) आजीवन वैयक्तिक एवं सामाजिक स्तर पर संघर्षरत रहने वाले इस कवि द्वारा गद्य-लेखन के पीछे उसकी यही दृष्टि का हाथ रहा। आधुनिक युग में गद्य-साहित्य के महत्व को लक्ष्य करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सही कहा है –"जो कोई भी नवयुग का आदि-प्रवर्तक क्यों न हो, वह निश्चय ही गद्य लेखक था। सच पूछा जाए तो नवयुग का साहित्य गद्य का साहित्य है।"[1]

1- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य की भूमिका, संस्करण 1979, पृ0 119

यूँ तो हिन्दी में कथा-साहित्य की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है, उन्नीसवीं सदी से ही इसका आरंभ माना जा सकता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय साहित्य के लिए कथा-साहित्य उतना ही नया है, जितना हिन्दी के लिए । वस्तुतः हिन्दी का विकास भारत की जिन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य के परिपार्श्व में हुआ है, उनमें कथा-साहित्य लेखन की परंपरा काफी पुरानी रही है । 'जातक कथाएँ', 'पंचतंत्र की कहानियाँ', गुणाढ्य की पैशाची प्राकृत में लिखी 'बृहत् कथा' आदि के रूप में हमारे यहाँ कथा-साहित्य की समृद्ध परंपरा रही है । इनमें मुख्य रूप से पौराणिक आख्यान, नैतिकता, धर्म और भक्ति सिखाने वाली कहानियाँ हैं । लेकिन हिन्दी में जिस कथा-साहित्य का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं सदी में हुआ, वह परंपरागत भारतीय कथा-साहित्य से नितांत भिन्न स्वरूप का था । जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पुराने कथा-साहित्य एवं आधुनिक युग की कथा-विधा में अंतर करते हुए लिखा है -''नये यंत्र युग ने जिन गुण-दोषों को उत्पन्न किया है, उन सबको लेकर उपन्यास और कहानियाँ अवतीर्ण हुई हैं । छापे के कल ने ही इनकी माँग बढ़ाई है और छापे के कल ने ही उनकी पूर्ति का साधन बनाया है । यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियाँ संस्कृत की कथा और आख्यायिकाओं की सीधी संतान हैं । एक युग गया है जब 'कादम्बरी' और 'दशकुमार चरित' की रीति पर सभी प्रांतीय भाषाओं में उपन्यास लिखे गये हैं । कहीं-कहीं तो उपन्यास का पर्यायवाची शब्द ही

कादम्बरी है। इस नवीन साहित्यांग का कथा आख्यायिका आदि से जो मौलिक अंतर है वह आदर्शगत है। यंत्रयुग की विशेष देन वैयक्तिक स्वाधीनता उपन्यास का आदर्श है और काव्यकाल का पूर्वनिर्धारित और परंपरा समर्थित सदाचार-कथा आख्यायिका का आदर्श है। उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करने का प्रयास रहता है। कथा और आख्यायिका में कवि कल्पना के बल पर अपनी वास्तविक दुनिया से भिन्न एकदम नयी दुनिया बना सकता है।"[1]

हिन्दी में आधुनिक युग के ठीक पहले भारतीय कथा-साहित्य अपने परंपरागत रूप से थोड़ा अलग हट गया। इस दौर में 'लैला-मजनूं,' 'बागो उर्दू,' 'शीरीं-फरहाद,' 'किस्सा-ए-गुलबकावली', 'किस्सा तोता-मैना', 'छबीली भटियारिन' आदि मुस्लिम प्रभावापन्न कहानियाँ लिखी गयीं, जिनमें मुख्य रूप से रोमांस और तिलस्मी करामातों की भरमार थी। प्रेस और यातायात के साधनों के प्रचार के साथ ही उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में कई कहानियाँ प्रकाशित हुईं जिनमें मुंशी इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' लल्लूलाल की 'प्रेमसागर' (1801 ई), 'सिंहासन बत्तीसी' (1801 ई०), 'बैताल पच्चीसी' (1805 ई०) 'माधवानल कामकंदला' (1805 ई०), सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' आदि प्रमुख हैं। ये कहानियाँ पुरानी कहानियों के ढर्रे पर ही लिखी गईं।

हिन्दी में आधुनिक ढंग के कथा-लेखन का श्रीगणेश भारतेन्दु युग से हुआ। यों तो हिन्दी में कहानी-लेखन भारतेन्दु युग से पूर्व शुरू हो चुका था

1- 'साहित्य का साथी', द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-7, पृ० 307 (प्रथम संस्करण 1981)

लेकिन हिन्दी उपन्यासों का सृजन भारतेन्दु युग से शुरू हुआ । स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "पूर्णप्रकाश" और "चन्द्रप्रभा" नाम का सर्वप्रथम उपन्यास लिखा । इसमें उन्होंने वृद्ध-विवाह के दोष, पुरानी कुरीति रूढ़ियों का विरोध, स्त्री-शिक्षा का प्रचार और नारी जाति के पुनरुत्थान का संदेश दिया । इसी समय लाला श्रीनिवास दास का उपन्यास 'परीक्षागुरु' प्रकाशित हुआ, जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास कहा । बाबू राधाकृष्ण दास का 'निःसहाय हिन्दू' (1886 ई०), बालकृष्णभट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886 ई०) और 'सौ अजान एक सुजान' (1892 ई०), रत्नचंद्र प्लीडर का 'नूतन चरित्र', मेहता लज्जाराम का 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (1899 ई०) और 'धूर्त रसिकलाल' (1899 ई०), गोपाल राम गहमरी का 'बड़ा भाई' और 'सास पतोहू' (1898) तथा किशोरी लाल गोस्वामी के 'त्रिवेणी' (1889 ई०), 'हृदय-हारिणी' (1890 ई०), 'लवंगलता' (1890 ई०), 'सुख-शर्वरी' (1891 ई०), राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा विपत्ति' (1882 ई०), हनुमंत सिंह का 'चंद्रकला' (1893 ई०), गोकुलनाथ शर्मा का 'पुष्पावती' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए । इनमें से अधिकांश उपन्यासों में थोड़ा-बहुत रोमांस और थोड़ा-बहुत नैतिक शिक्षा का संदेश दिया गया था । इस युग में कुछ कहानियाँ भी लिखी गईं, जिनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्दी की 'राजा भोज का सपना' आदि कहानियाँ प्रमुख हैं । यद्यपि इन कहानियों की शैली आधुनिक

है तथापि आधुनिक कहानी में लेखक का जो एक वैयक्तिक मत और अन्तर्निहित उद्देश्य होता है वह इनमें बहुत स्पष्ट नहीं है । वस्तुतः इस युग में कहानी का आधुनिक रूप विकसित नहीं हो पाया था ।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में ही देवकी नंदन खत्री ने "चंद्रकांता" और "चंद्रकांता संतति" नाम के दो उपन्यास लिखे । यद्यपि ये उपन्यास तिलस्मी किस्म के हैं तथापि इनका महत्व इस बात के लिए है कि इन्होंने हिंदी उपन्यास के लिए एक बड़ा पाठक वर्ग तैयार किया । इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है –" उपन्यास के वास्तविक रूप से तो इन्होंने जनता को परिचित नहीं कराया, परन्तु उपन्यासों की जो सबसे बड़ी विशेषता मनोरंजन है, उसे प्राप्त करने की दुर्दम लालसा उन्होंने उत्पन्न कर दी ।"[1]

वस्तुतः हिन्दी कथा-साहित्य का वास्तविक रूप बीसवीं सदी के दूसरे दशक से अधिक स्पष्ट होने लगा । यों तो पहले दशक में भी कुछ कहानियाँ लिखी गईं लेकिन इस काल में कहानियों का वास्तविक रूप उभर कर सामने नहीं आ सका । इसलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस काल को "हिन्दी कहानियों का प्रयोग-काल"[2] कहा है । इस समय पहले-पहल अंग्रेजी और संस्कृत के नाटकों को कहानी के रूप में रूपांतरित किया गया । बाद में किशोरीलाल गोस्वामी की टेम्पेस्ट के आधार पर लिखी कहानी, आचार्य रामचंद्र

1- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी –हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ0 24
2- वही पृ0 २५५ (संस्करण, 1982)

शुक्ल की "ग्यारह वर्ष का समय", बंग महिला की 'दुलाई वाली' आदि कहानियों ने बीसवीं सदी के दूसरे दशक में विकसित होने वाले कथा-साहित्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार की ।

हिन्दी कथा-साहित्य को नयी दिशा देने में 1901 में प्रकाशित 'सरस्वती' तथा 1911 में प्रकाशित 'इन्दु' पत्रिका ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1915 ई0 की 'सरस्वती' में पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी की महत्त्वपूर्ण कहानी 'उसने कहा था' प्रकाशित हुई । इस कहानी ने हिन्दी कथा-साहित्य को नई दिशा प्रदान की । इसके पहले 'इन्दु' में जयशंकर प्रसाद की संभवतः पहली कहानी 'ग्राम' (1911) का प्रकाशन हुआ । इसी समय राजा राधिका-रमण की कहानी 'कानों में कंगना' का भी प्रकाशन हुआ । सन् 1916 में हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचंद का आगमन महत्त्वपूर्ण घटना है । सन् 1916 में प्रेमचंद की प्रथम कहानी 'पंच-परमेश्वर' प्रकाशित हुई । यह 'उसने कहा था' के जोड़ की कहानी थी, जिसमें यथार्थोन्मुख आदर्श का अद्भुत मिश्रण हुआ था । इसके बाद प्रेमचंद के कई कहानियाँ और उपन्यास प्रकाशित हुए । प्रेमचंद के कथा-साहित्य ने राल्फ-फाक्स की इस मान्यता का खंडन किया कि —''उपन्यास हमारे बुर्जुआ समाज का महाकाव्य है । ... हम यहाँ तक कह सकते हैं कि उपन्यास न केवल बुर्जुआ साहित्य की प्रतिनिधि उपज है बल्कि श्रेष्ठतम रचना भी है ।''[1] प्रेमचंद ने सदियों से उपेक्षित, अपमानित और

---

1 - राल्फ-फाक्स – उपन्यास और लोकजीवन, पृ0 3।

दलित किसानों और सामाजिक रूढ़ियों से त्रस्त और असहाय नारी जाति को आवाज दी। उन्होंने भारतीय जनता के जीवन को अपनी कथा का आधार बनाया। इसलिए उनके संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना सही है — ''झोपड़ियों से लेकर महलों तक, खोमचे वालों से लेकर बैंकों तक, गाँव से लेकर धारासभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। आप बेखटके प्रेमचंद का हाथ पकड़कर मेड़ों पर गाते हुए किसान को, अन्तःपुर में मान किए बैठी प्रियतमा को, कोठे पर बैठी हुई वारवनिता को, रोटी के लिए ललकते हुए भिखमंगों को, कूट परामर्श में लीन गोयन्दों को, ईर्ष्या-परायण प्रोफेसरों को, दुर्बल हृदय बैंकरों को, साहसपरायण चमारिन, ढोंगी पंडितों को, फरेबी पटवारी को, नीचाशय अमीर को देख सकते हैं और निश्चिंत होकर विश्वास कर सकते हैं कि जो कुछ आपने देखा वह गलत नहीं है।''[1] प्रेमचंद के लिए साहित्य स्वान्तःसुखाय नहीं है, बल्कि उन्होंने साहित्य को ''जीवन की आलोचना''[2] कहा था। उनकी इस प्रस्थापना का स्वाभाविक निष्कर्ष यह है कि साहित्य में जीवन की सच्चाइयों और सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हो।

1- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी — हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ० 50

2- प्रेमचंद — साहित्य का उद्देश्य, पृ० 10, संस्करण, 1967

(ग) सामाजिक चेतना का आशय

सामाजिक चेतना का अभिप्राय केवल सामाजिक गठन का स्वरूप, सामाजिक आचार-संहिता पर आधारित सामाजिक संबंध ही नहीं है । समाज का यह एकपक्ष है । इसके अतिरिक्त अर्थव्यवस्था, उत्पादन प्रणाली किसी भी समाज के नियामक कारक होते है/और उसके अनुरूप उस समाज में राजनीतिक प्रणाली, कानून-व्यवस्था आदि का ढाँचा तैयार होता है और अपने निहित स्वार्थों के अनुरूप सत्ताधारी वर्ग समाज में संस्कृति का जाल बिछाता है । एक सजग रचनाकार समाज की संरचना में व्याप्त इन सारी चीजों को बहुत ही पैनी दृष्टि से देखते हुए उसके असली स्वरूप को पहचानता है और अपने लेखन के द्वारा जनता को वह दृष्टि देता है जिससे जनता भी उसके असली रूप को पहचान सके ।

हमारे लिए यह गर्व की बात है कि साहित्य की इस कसौटी पर हिन्दी-साहित्य खरा उतरता है । आरंभिक काल से ही हिन्दी-साहित्य में युग-चेतना की अभिव्यक्ति हुई है । संस्कृत-साहित्य, सिद्धों का साहित्य और भक्त कवियों का साहित्य, सामाजिक चेतना से ओत-प्रोत है । सामाजिक चेतना का ही एक रूप है सामाजिक विद्रोह । सामाजिकचेतना जब अपने उत्कर्ष पर पहुँचती है तो यह स्वाभाविक है कि इस चेतना से युक्त व्यक्ति अपने समाज की जर्जर परंपराओं और मूल्यों के प्रति विद्रोह कर बैठे तथा समाज को एक नयी जीवन-दृष्टि दे । भारतीय साहित्य में विद्रोह का भाव नया नहीं है । कबीर,

दादू आदि निर्गुणियाँ संतों में सामाजिक चेतना सामाजिक विद्रोह के रूप में दिखाई देती है। सूर और तुलसी में यह चेतना प्रत्यक्षतः देखी जा सकती है। संस्कृत साहित्य में यद्यपि समाज तो है लेकिन विद्रोह का भाव नहीं है। रीतिकालीन कवियों में यह चेतना लुप्तप्राय है, लेकिन हिन्दी का आधुनिक काल इस चेतना के गर्भ से ही पैदा हुआ। हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम चरण यानी भारतेन्दु काल में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति प्रखर रूप में हुई। ज्ञातव्य है कि रीतिकाल में काव्य-साहित्य लोकजीवन से कटकर, राजाओं और रईसों के दरबारों में पहुँचकर मनोविनोद का साधनमात्र रह गया था। भारतेन्दु मंडल के साहित्यकारों ने उसे दरबारीपन से निकालकर लोकजीवन के सामने ला खड़ा किया। स्वयं भारतेन्दु ने अपनी कविताओं, नाटकों और उपन्यास में युगीन उपस्थिति किया। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों, जर्जरित परंपराओं तथा विदेशी दासता का विरोध किया। उनके इस पुनीत कार्य में बाबू राधाकृष्णदास, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी आदि रचनाकारों ने भरपूर सहयोग दिया।

जो चेतना क्रमशः हिन्दी-साहित्य के जन्मकाल से अभिव्यक्ति पा रही थी उसी का विकास बीसवीं सदी में छायावाद के रूप में हुआ। भारतीय साहित्य के इतिहास में छायावादी युग की ऐतिहासिक महत्ता है। छायावाद हमारी विशेष सामाजिक और ऐतिहासिक आवश्यकता से पैदा हुआ। उसने साहित्य और समाज को पुरानी रूढ़ियों से मुक्त करने के साथ ही उनका ध्यान राष्ट्रीय जागरण और मानवीय भावनाओं की ओर खींचा। जैसा कि डा०नामवर

सिंह का कहना है --''छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से ।''[1]

विदित है कि निराला ने अपनी साहित्य-साधना की शुरुआत उस रोमांटिक कविता से की थी जो वैयक्तिकता, आत्मनिष्ठा और कल्पनाप्रवणता के लिए बदनाम रही है । लेकिन निराला की यह विशेषता है कि रोमांटिक भावबोध से जुड़े रहने के बावजूद उन्होंने यथार्थ को अनदेखा नहीं किया । यही कारण है कि यदि एक ओर उन्होंने सौंदर्य और शृंगारपरक 'जुही की कली' की रचना की, तो दूसरी ओर 'वह तोड़ती पत्थर' जैसी कविता की, एक ओर कल्पनाप्रधान उपन्यास 'अप्सरा' लिखा तो दूसरी ओर यथार्थ के धरातल पर बिचरते 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर' को स्थापित किया । कहने का मतलब यह कि निराला की पारदर्शी चेतना ने जीवन-जगत की वास्तविकताओं को सूक्ष्मता से देखा और उसे अपने रचना-संसार में उतारा । मुक्तिबोध के शब्दों में कहा जाए तो निराला 'आत्मचेतस' और 'विश्वचेतस' दोनों ही थे । वे व्यक्ति-संवेदन को समाज-संवेदन से जोड़ने की कला में काफी दक्ष थे, और यही कारण है कि उनकी रचना गहराई के साथ जीवन के विस्तार को स्वीकार करती है ।

1- डा0 नामवर सिंह -- छायावाद, पृ0 19, तृतीय संस्करण ,1979

छायावादी कवि निराला आरंभ से ही सामाजिक यथार्थ को आत्मसात् करते रहे । उनकी चेतना को प्रस्फुटित और विकसित करने में जितना हाथ उनके व्यक्तित्व का था उतना ही उनके युगीन परिवेश का । विदित है कि छायावादी कवियों – जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा की अपेक्षा निराला को अपने जीवन में अधिक संघर्ष करना पड़ा था । उनका यह संघर्ष कई स्तरों पर देखा जा सकता है, यथा – सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक और कुछ हद तक राजनीतिक भी । वस्तुतः एक संवेदनशील व्यक्ति कभी भी अपने परिवेश से असंपृक्त नहीं रह सकता । यही नहीं उसके व्यक्तित्व, चेतना, स्वभाव और संस्कारों का निर्माण उसके चारों ओर फैला समाज और उसके समय का इतिहास करता है । व्यक्तित्व के निर्माण में जितनी महत्वपूर्ण भूमिका परंपरा की होती है, उससे अधिक महत्वपूर्ण उसके अपने युग की भूमिका होती है । अपने युग से अलग-थलग रहकर रचना करना एक श्रेष्ठ रचनाकार के लिए संभव नहीं है । शायद किसी जमाने में ऐसा संभव रहा हो कि रचनाकार ने समाज से अलग रहकर भी रचना की हो, लेकिन यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनकी रचना व्यक्ति को क्षणिक आनंद भले ही दे दे, वह कालजयी कृति नहीं बन सकती है । हर युग में श्रेष्ठ रचनाकार को अपने समाज के तुमुल संग्राम और संघर्ष का साक्षी बनना पड़ता है । इस बात का प्रमाण कालिदास से लेकर आज तक की श्रेष्ठ रचनाएँ देती हैं । कालिदास के काव्य में संघर्ष, जीवन-यापन की असुविधाओं या दुःख-दर्द बहुत

कम चित्रित हुआ है, कारण कि उस समय समस्याएँ आज की तरह जटिल नहीं थीं। जैसा कि गंगाप्रसाद पाण्डेय का कहना है — ''उस समय आज की तरह अन्न और वस्त्र का अभाव नहीं था और न एक-दूसरे के शोषण का ही इतना आधिक्य था।''[1] इसके विपरीत तुलसी तथा अन्य भक्त कवियों की रचनाओं में जनता के दुःख-दर्द, महामारी, अकाल, गरीबी, की संस्कृतियों के घात-प्रतिघात से उत्पन्न क्षोभ का अद्भुत चित्रण हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि युग-चेतना की अभिव्यक्ति किसी भी साहित्यिक-कृति की श्रेष्ठता के लिए अपरिहार्य होती है। जो रचनाकार अपने युग-सत्य की उपेक्षा करता है उसकी रचना निष्प्राण हो जाती है। निराला ने अपने युग-सत्य को पूरी तरह आत्मसात् कर लिया था, जिससे उनकी रचनाएँ कालजयी बन सकीं। उनके साहित्य में युग इस रूप में व्याप्त है कि उसे युग-दर्शन की उपाधि भी दी गई है। दूधनाथ सिंह के शब्दों में — ''निराला अपने समय और समाज के संघात की अद्वितीय उपज हैं। उनकी मानसिक बनावट में हिंदुस्तान की समाजी जिंदगी के गहरे धक्के सलवटों के रूप में तरह-तरह बैठे हुए नजर आते हैं।''[2]

विदित है कि छायावादी दौर में भारत में राष्ट्रीयता की भावना और पकड़ चुकी थी, किन्तु अभी तक उसकी सही दिशा निर्धारित नहीं हो सकी थी।

1- डा० गंगाप्रसाद पाण्डेय — महाप्राण निराला, पृ० 150-51, द्वितीय संस्करण, 1968

2- श्री दूधनाथ सिंह — निराला : आत्महंता आस्था, पृ० 192, प्रथम संस्करण, 1972

इसके साथ ही समाज में बहुत सारे पुराने जर्जर मूल्य टूट रहे थे और नये जीवन-मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो रही थी । इसी संक्रमण काल में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने अपनी साहित्य-यात्रा आरंभ की । उनकी इस साहित्य-यात्रा की सही समझ के लिए उनके युगीन परिवेश पर विहंगम-दृष्टि डालना यहाँ पर प्रासंगिक हो जाता है ।

(ग) युगीन परिवेश :

ज्ञातव्य है कि राष्ट्रीय आंदोलन के उभार का जो काल है वही निराला का आरंभिक रचना-काल है । यों तो भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की शुरुआत 1857 के गदर से हो चुकी थी, लेकिन बीसवीं सदी के आरंभ में ही कुछ ऐसी अप्रिय और दमनकारी घटनाएँ घटीं जिसने इस लड़ाई को न केवल तेज किया, बल्कि उसे एक नयी दिशा की ओर उन्मुख भी किया । इस संदर्भ में जो आरंभिक महत्वपूर्ण घटना है वह है ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की बंगभंग की योजना । 1905 ई० में बंगभंग की योजना के बाद भारतीय जनमानस में अंग्रेजों की नीतियों के प्रति असंतोष तीव्र होने लगा । वैसे तो बंगभंग की योजना की खबर मिलते ही सारे भारत में उसका विरोध शुरू हो गया, लेकिन जब लोगों ने देखा कि ब्रिटिश शासन बंगभंग की योजना भारत पर लादने पर आमादा है तो उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी का नारा बुलंद किया । ''कांग्रेस ने 1903 ई० से लेकर 1906 तक प्रत्येक अधिवेशन

में प्रस्ताव पास करके उसको रद्द करने की माँग की ।''[1] बंगभंग के बाद बहिष्कार और स्वदेशी का जो आंदोलन चला वह सिर्फ बंगाल तक ही सीमित नहीं था । संयुक्त प्रांत, मध्यप्रदेश, बम्बई, पंजाब, मद्रास आदि प्रांतों में भी यह आंदोलन बड़े पैमाने पर चला । इस आंदोलन ने निराला पर गहरा प्रभाव डाला । इस संदर्भ में डा० रामविलास शर्मा का यह कथन उल्लेखनीय है —''निराला ने बचपन में बंगभंग विरोधी स्वदेशी आंदोलन देखा । उन्होंने उन वीर युवकों की कहानियाँ पढ़ी और सुनी जिन्होंने सशस्त्र क्रांति के द्वारा भारत को मुक्त कराने के प्रयास में अपने प्राण दिए ।''[2]

प्रथम विश्वयुद्ध और उससे उत्पन्न परिस्थितियों ने निराला की विचारधारा को प्रभावित किया । इस युद्ध में कांग्रेसी नेताओं ने ब्रिटिश सरकार की इस उम्मीद से मदद की थी कि उन्हें युद्धोपरांत 'डोमिनियन स्टेटस' मिलेगा । लेकिन अंग्रेजों ने उनकी इस इच्छा पर तुषारापात किया, और उनकी इस माँग का जवाब रौलट एक्ट तथा जलियाँवाला बाग हत्याकांड से दिया । भारतीय जनमानस में इसकी गहरी प्रतिक्रिया हुई । प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ही भारत के कुछ क्रांतिकारियों ने ''जिनमें डा० अविनाश चंद्र भट्टाचार्य, वीरेन्द्र-

---

1- श्री अयोध्या सिंह — भारत का मुक्ति - संग्राम , पृ० 174, प्रथम संस्करण, 1977

2- डा० रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना, भाग-1, पृ० 14 तृतीय संस्करण, 1979

नाथ चट्टोपाध्याय, धीरेन्द्र सरकार, सदाशिव राव''[1] आदि के नाम प्रमुख हैं, जर्मन सरकार से मिलकर भारत में सशस्त्र विद्रोह करने की योजना बनाई थी, लेकिन ये अपने उद्देश्य में कामयाब नहीं हो सके। इसके अतिरिक्त 1917 ई० में रूस में हुई समाजवादी क्रांति ने भारत के पढ़े-लिखे लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। इस सारी स्थितियों की जानकारी निराला को अखबारों से मिलती। ''सूर्यकुमार बंगला के अखबार पढ़ते, मित्रों से देश-विदेश की चर्चा करते, कुछ नौजवान गुप्त-छिपकर क्रांतिकारियों के बारे में साहित्य पढ़ने को देते, जिस पर सरकार ने प्रतिबंध लगा रखा था।''[2]

1920-21 में हुए असहयोग आन्दोलन और किसान आन्दोलन से भी निराला का गहरा संपर्क रहा। 1920-21 के आस-पास हुए किसान आंदोलन के तीन प्रमुख क्षेत्र थे – पंजाब, मालाबार और पूर्वी संयुक्त प्रांत। इस किसान आन्दोलन का चरित्र भी साम्राज्यवाद विरोधी और सामंतवाद विरोधी था। चूंकि आगरा और अवध के जिलों में किसानों से जमीन से बेदखल किया जा रहा था और उन्हें काफी सताया जा रहा था, अतः किसान आन्दोलन ने वहाँ उग्र रूप धारण कर लिया। अयोध्या सिंह ने उस समय के अवध में

1- श्री अयोध्या सिंह – भारत का मुक्ति संग्राम, पृ० 315 - प्रथम संस्करण

2- डा० रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना, भाग-1, पृ० 36

चल रहे किसान आन्दोलन के संबंध में लिखा है -"13-14 जनवरी 1921 को फैजाबाद जिले में किसानों ने जमींदारों पर हमला आरंभ किया । साथ-साथ ये राष्ट्रीय आंदोलन के जुलूसों में भी शामिल होते । लगभग दस हजार किसानों ने फैजाबाद के आस-पास के प्रदर्शनों में हिस्सा लिया था और खुद फैजाबाद शहर में प्रदर्शन में कई हजार किसान शामिल हुए थे । रायबरेली में इससे भी बड़ी अशांति देखी गई ।..."[1] इसके संबंध में जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी आत्मकथा में लिखा है -"अवध में एक बड़ा किसान आन्दोलन फैल गया, इसमें आश्चर्य की बात नहीं थी । मेरे लिए जो आश्चर्य की बात थी वह यह कि किसी शहरी मदद के बिना या राजनीतिकों के दखल दिए बिना बिल्कुल अपने आप फैल गया । किसान आन्दोलन कांग्रेस से बिल्कुल अलग था, जो असहयोग आन्दोलन चल रहा था, उससे इसका कोई संबंध नहीं था । या शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि इन दोनों शक्तिशाली आन्दोलनों के बड़े पैमाने पर फैलने के मूल कारण यही थे ।..."[2] जाहिर है कि इतने सशक्त किसान आन्दोलन से निराला जैसा सजग रचनाकार अछूता नहीं रह सकता था । यद्यपि निराला उस समय मेदिनीपुर (बंगाल) में रहते थे, लेकिन ये अवध में उग्र होते

1- अयोध्या सिंह - भारत का मुक्ति संग्राम , पृ0 426

2-श्री जवाहरलाल नेहरू - एन आटोबायोग्राफी - पृ0 54, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, रीप्रिंट ,1982 - अनुवाद लेखिका द्वारा ।

किसान आन्दोलन से पूरी तरह वाकिफ थे । उन्होंने महिषादल में ही किसानों को संगठित करने का प्रयास किया, जैसा कि रामविलास जी ने लिखा है —
""वे महिषादल के आसपास के गाँवों में जाते, मित्रों के साथ यहाँ किसानों, कोरियों, जुलाहों आदि का संगठन करते, उन्हें स्वदेशी का महत्व समझाते।""[1]

उल्लेखनीय है कि 1917 ई० की रूस में सफल समाजवादी क्रांति तथा प्रथम महायुद्ध में सोवियत संघ की सफलता, कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना तथा साम्यवादी आंदोलन ने भारत के स्वाधीनता संग्राम को शक्तिशाली बनाने और राष्ट्रीय आन्दोलन के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इसके साथ ही ""1925-27 के दौरान चीन की राष्ट्रीय क्रांति की अग्रगति ने भारतवासियों में बड़ा जोश पैदा किया था । इस क्रांति के विरुद्ध इस्तेमाल के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भारतीय सेना टुकड़ियाँ भेजी थीं जिसकी 1927 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने मद्रास अधिवेशन में कड़ी आलोचना की थी । अतः जब 1939 में द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ा और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भारतीय नेतृत्व से राय लिए बिना भारतीय जन-धन का भरपूर दुरुपयोग किया तो इसकी गहरी प्रतिक्रिया भारतीय जनमानस में हुई ।

इसके पूर्व प्रथम विश्वयुद्ध में भी ब्रिटिश शासकों ने भारतीय जन-धन का बुरी तरह इस्तेमाल किया था । उस युद्ध की आग में झोंकने के लिए

1- डा० रामविलास शर्मा — निराला की साहित्य साधना, भाग-1, पृ० 39

ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भारतीय सैनिकों को बड़े पैमाने पर बेल्जियम, फ्रांस, उत्तर चीन आदि जगहों पर भेज दिया। युद्ध के दौरान बड़े पैमाने पर सेना में नयी नियुक्तियाँ हुईं। इस विशाल सेना के साजो-सामान, रसद और युद्ध के लिए अन्य सामग्री लाने-ले-जाने का सारा खर्च हिन्दुस्तान को उठाना पड़ा। दूसरी बात यह हुई कि हिन्दुस्तान में पहले से ही अन्नाभाव की जो स्थिति चली आ रही थी, युद्ध काल में खाद्यान्न के निर्यात से वह और भयंकर हो गयी। इसके कारण खाद्यान्न के भाव काफी बढ़ गये। ''लाखों किसानों के फौज में जाने के कारण कृषि-व्यवस्था बिगड़ गई और खाद्यान्न का उत्पादन कम हो गया। फलतः खाद्यान्न के दाम अप्रत्याशित रूप से बढ़ गये। खाद्यान्न के दामों की इस वृद्धि से ब्रिटिश व्यापारी कम्पनियों, भारतीय जमींदारों तथा व्यापारियों को बड़ा लाभ हुआ किन्तु आम जनता तबाह हो गयी।''[1] दूसरी तरफ पटसन, कपास, तिलहन आदि कच्चा माल तैयार करने वाले किसान निर्यात के अभाव में तबाह हो गए। युद्ध के पहले भारत ब्रिटेन तथा अन्य देशों को कच्चा माल निर्यात करता था, लेकिन युद्धकाल के दौरान भारतीय माल को ढोने वाले जहाज युद्ध का सामान ढोने लगे। फलतः कच्चे माल का निर्यात कम हो गया। किसानों ने इन वस्तुओं की खेती कम कर दी।

युद्ध के दौरान भारत की अर्थव्यवस्था बुरी तरह चौपट हो गई। यहाँ के किसान तबाह हो गए। युद्ध समाप्त होने के बाद भी भारतीय जनता

1- श्री अयोध्या सिंह — भारत का मुक्ति संग्राम, पृ० 365

की राहत नहीं मिली । जैसा कि कहा गया है कि युद्ध और महामारी में चोली-दामन का साथ है — इस युद्ध के बाद भारत में महामारी फैली । ''इस बीमारी से अनुमानतः 120-30 लाख लोग मरे ।''[1] ज्ञातव्य है कि निराला का परिवार भी उस महामारी की चपेट में आ गया । उनकी पत्नी, भाई-भाभी आदि प्रियजन इस महामारी की भेंट चढ़े ।

प्रथम विश्वयुद्ध की तरह ही द्वितीय विश्वयुद्ध ने भी भारत की आर्थिक संरचना को तहस-नहस कर दिया । भारत में अन्नाभाव तो प्रथम विश्व युद्ध के समय से ही शुरू हो गया था, जिसके कारण भारत को बर्मा से चावल आयात करना पड़ता था ; लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान के शामिल होने से चावल का आयात बंद कर दिया गया । इससे देश में तत्काल अन्नाभाव की स्थिति पैदा हो गयी । इस कमी को गहराने में ज़मींदारों और व्यापारियों द्वारा की जाने वाली जमाखोरी तथा कालाबाज़ारी का भी बहुत बड़ा हाथ था । इसके कारण देश के अनेक हिस्सों में अकाल पड़ा, भारी संख्या में मौतें हुईं । अपनी पुस्तक 'आज का भारत' में रजनीपाम दत्त ने लिखा है — ''प्रोफ़ेसर के0पी0 चट्टोपाध्याय द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार केवल बंगाल में अकाल से मरने वालों की संख्या 35 लाख थी । अकाल के बाद मलेरिया महामारी फैली और सितम्बर 1944 तक विभिन्न बीमारियों से 12 लाख व्यक्ति

1- श्री अयोध्या सिंह — भारत का मुक्ति का संग्राम , पृ0 366

की मृत्यु बंगाल में हुई।''[1] इस प्रकार युद्ध, अकाल और महामारी के कारण भारत की अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। दो जून मोटा-खोटा खाने के लिए किसान जमींदारों, सूदखोर महाजनों के यहाँ अपनी जमीन रेहन रखने या बेचने को विवश हो गये। इस संबंध में रजनीपामदत्त का कहना है -''बिक्री की यह प्रक्रिया इस बार जमीन तक ही सीमित न रही। जनता का सम्पूर्ण जीवन छिन्न-भिन्न हो गया। माँ-बाप अपने छोटे-छोटे बच्चों को इस आशा में सड़क पर फेंकने को मजबूर हो गये कि कोई उन्हें उठाकर ले जायेगा और उन्हें खाना खिला देगा। गृहस्वामी ने भाग्य के भरोसे गृह त्याग किया। महिलाएँ अपना शरीर बेचने पर मजबूर हो गईं।''[2]

इस अवसादपूर्ण अवस्था की प्रतिच्छाया साहित्यिक क्षेत्र पर न पड़े यह कतई मुमकिन न था। साहित्यिक क्षेत्र में जैसा कि गंगा प्रसाद पाण्डेय ने लिखा है -''सन् 14 के युद्ध के पश्चात् जो स्थिति यूरोपीय लेखकों की थी उससे भी अधिक उदासीनता, खिन्नता और व्यंग्यपूर्णता इस युद्ध के समय से भारतीय लेखकों के ऊपर आ गयी। उनके सारे स्वप्न जैसे भंग हो गये और वे एक साथ ही सिहर उठे। निराला पर भी इसका प्रभाव पड़ा। युद्ध के दिनों में निराला की स्थिति बहुत ही भयावह थी। न भोजन, न वस्त्र, न कागज, न कलम,

---

1- रजनीपाम दत्त - आज का भारत, पृ० 279, संस्करण, 1977

2- वही, पृ० 280

O,152,3,M96:g(Y) TH-1540
Diss
152 M4

न छपाई, न लिखाई ..... साहित्यिक निराला के पास जीवन-यापन का कोई अन्य साधन नहीं था ।''[1]

समकालीन राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की भीषण अग्नि में भी निराला की प्रतिभा को तपना पड़ा था । इसके साथ ही उनके समय की सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ भी कम भीषण न थीं । निराला जिस समाज में रहकर साहित्य-सृजन कर रहे थे वह कई प्रकार की रूढ़ियों से जकड़ा हुआ था । यद्यपि भारत में वर्ण-व्यवस्था के ध्वंस की प्रक्रिया अंग्रेजों के आने से बहुत पहले शुरू हो गई थी लेकिन अंग्रेजी राज में उसे नया जीवन मिला । वर्ण-व्यवस्था और दृढ़ होने लगी । अंग्रेजों ने अपनी 'फूट डालो और शासन करो' नीति के तहत एक ओर हिन्दू-मुस्लिम में वैमनस्य का बीजारोपण किया और दूसरी ओर द्विज और शूद्र के बीच की खाई को और चौड़ा किया । ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए यहाँ के जमींदारों को प्रश्रय दिया, जिसके कारण जमींदारों ने श्रमजीवी और नीच समझी जाने वाली जातियों के शोषण की प्रक्रिया को और तेज कर दिया । खेतिहर मजदूरों – जिनमें अधिकांश निम्न-वर्ग के ही लोग थे- की बेगार से जमींदार फायदा उठाते और यह सब अंग्रेजों के संरक्षण में होता था, जिसके कारण निरीह किसान उनके खिलाफ आवाज नहीं उठा सकते थे । उनके सामने दोनों के अत्याचार सहने के सिवा और कोई चारा न था । समाज के रक्षकों द्वारा बार-बार वेद-शास्त्र की दुहाई देकर उन्हें यह विश्वास दिलाया जाता था कि वे शोषित होने के लिए ही बने हैं । निराला ~~जी~~ के लिए यह स्थिति

1- गंगा प्रसाद पाण्डेय - महाप्राण निराला, पृ० 111

अलदूप थी ।

बहुत सारी सामाजिक मान्यताएँ जैसे शूद्रों को दास बनाये हुई थी वैसे ही ये स्त्रियों की दासता का भी कारण थी । उनकी पराधीनता का मुख्य कारण आर्थिक निर्भरता थी । पुरुष पर आर्थिक रूप से निर्भर रहने के कारण ये घर की चारदीवारी में कैद रहने और तरह-तरह के अत्याचार सहने के लिए विवश थी । आर्थिक पराधीनता के कारण ही समाज में दोहरी नैतिकता का निर्माण हुआ । विधुर को तो समाज ने पुनर्विवाह का अधिकार दिया लेकिन विधवा के लिए सारे सुख - स्वप्न बना दिये । विधवाओं पर सामाजिक बंदिशें और कड़ी कर दी गई । स्त्री-पुरुष की इस असमानता को शास्त्र-सम्मत करार ठहराया गया । शिक्षा के अभाव के कारण स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति सजग नहीं थी इसलिए अत्याचार सहने के सिवा उनके पास और कोई उपाय नहीं था ।

तत्कालीन समाज में कई प्रकार के कर्मकांड और सामाजिक कुरीतियाँ जैसे – छुआछूत, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा आदि प्रचलित थीं । इन कुरीतियों को दूर करने के लिए भारत में 'ब्रह्म-समाज', 'आर्य-समाज', 'रामकृष्ण-मिशन' आदि अनेक समाज-सुधार आन्दोलन हुए । इन आन्दोलनों ने शिक्षा, समाज और संस्कृति को बहुत अधिक प्रभावित किया । राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, विवेकानंद, राणा डे आदि समाज-सुधारकों ने सती-प्रथा, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, छुआछूत आदि को मिटाने तथा विधवा-विवाह और नारी-शिक्षा का प्रचार किया । इस प्रकार के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जागरण के द्वारा उन्होंने भारत के राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि तैयार की । वस्तुतः जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

ने कहा है –''यह केवल राजनीतिक संघर्ष का काल नहीं था, केवल सामाजिक शक्तियों के एक-दूसरे से टकराने का काल नहीं था, बल्कि एक नवीन युग के जन्म लेने का समय था । यहाँ से हमारा देश नये मोड़ पर आकर खड़ा हो गया और उसके साथ-साथ देश की साहित्यिक चेतना भी नयी दिशा की ओर मुड़ी । ..... प्रधान रूप से इसी समय से भारतीयों का अपनी सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक दुर्गतियों और साहित्यिक त्रुटियों की ओर ध्यान गया ।''[1] उल्लेखनीय है कि निराला ने अपने व्यक्तित्व निर्माण का अधिकांश भाग बंगाल में बिताया, जहाँ ब्रह्म समाज और रामकृष्ण मिशन काफी सक्रिय था । उन्होंने बहुत नजदीक से बंगाल में चल रहे सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों को देखा और इससे बहुत प्रभावित भी हुए । स्मरणीय है कि निराला रामकृष्ण मिशन से जुड़े और कुछ समय तक मिशन की पत्रिका 'समन्वय' के सम्पादक भी रहे । इसका अर्थ यह है कि निराला के रचना-संसार में बहुत सारी सामाजिक कुरीतियों का जो विरोध दिखता है वह अकारण नहीं है, बल्कि भारत में हुए सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चेतना को आत्मसात् करने का वह प्रतिफल है ।

इस प्रकार निराला आधुनिक भारत के सांस्कृतिक नवजागरण की उस धारा से गहरे स्तर पर जुड़े हुए थे जो बहुत ही व्यापक फलक पर आधारित थी । इस सांस्कृतिक नवजागरण के विविध आयाम को रेखांकित करते हुए रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा है –'' यद्यपि भारत में संस्कृति के बड़े-से-

---

1- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, पृ० 220

बड़े नवोत्थान हुए हैं, किन्तु वर्तमान नवोत्थान उन सबसे अधिक शक्तिशाली और श्रेष्ठ है। उसने वैदिक धर्म की प्रवृत्ति-मार्गी धारा को प्रत्यावर्तित किया है। उसने संसार की सत्यता में मनुष्य के विश्वास को बढ़ाया है। उसने मनुष्य-मनुष्य के बीच एकता में वृद्धि की है। उसने शूद्रों को गौरव का मार्ग बताया है और नारियों को शताब्दियों की कारा से विमुक्त किया है।"[1] परवर्ती प्रकरणों में हम देखेंगे कि निराला के साहित्य में सांस्कृतिक जागरण द्वारा गृहीत "प्रवृत्तिमार्गी धारा", "मनुष्य-मनुष्य के बीच एकता में वृद्धि", "शूद्रों को गौरव का मार्ग-दर्शन", "नारी-मुक्ति" प्रभृति प्रवृत्तियों का कितना प्रतिबिम्बन हुआ है।

1- रामधारी सिंह "दिनकर" – संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 540, तृतीय संस्करण, 1962

—

द्वितीय अध्याय

निराला के कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिचय

द्वितीय अध्याय

हिन्दी कहानी और उपन्यास जगत को निराला की देन अमूल्य है। निराला ने अपने अधिकांश उपन्यासों और कहानियों का केन्द्र ग्रामीण जीवन और शोषित जनता को बनाया। यद्यपि निराला के जीवन का अधिकांश समय कलकत्ता, लखनऊ और इलाहाबाद में बीता, लेकिन गाँव से उनका संबंध जीवन के अन्त तक बना रहा। वे ग्रामीणों की समस्याओं और अभावों से पूरी तरह परिचित थे। गाँव में रहते हुए उन्होंने अंग्रेजी शासन, जमींदारों और अफसरों के अत्याचारों को देखा और अपनी रचनाओं में उनको चित्रित किया।

निराला का रचनाकाल लगभग 40-50 वर्षों के काल में फैला हुआ है। इस दौर में उन्होंने श्रेष्ठ कविता के साथ-साथ श्रेष्ठ उपन्यास और कहानियाँ भी लिखीं। उनके कथा-लेखन को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम चरण प्रगतिशील आन्दोलन के पहले का है और दूसरा प्रगतिशील आन्दोलन और उसके बाद का। प्रथम चरण में उन्होंने 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती' और 'निरुपमा' नाम के उपन्यास लिखे। दूसरे चरण में 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे', 'चमेली' और 'इन्दुलेखा' (दोनों अपूर्ण) जैसे उपन्यास लिखे।

'अप्सरा' का प्रकाशन लखनऊ से निकलने वाली पत्रिका 'सुधा' के छः अंकों में अगस्त 1930 ई० से जनवरी 1931 ई० तक धारावाहिक रूप में हुआ था। पुस्तक रूप में इसका प्रकाशन सन् 1931 ई० में गंगापुस्तक-माला

कार्यालय, लखनऊ से हुआ ।

'अलका' का प्रकाशन गंगापुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ से ही 1932 ई० में हुआ ।

'प्रभावती' 1936 ई० में सरस्वती भंडार, लखनऊ से निकली ।

'निरुपमा' का प्रकाशन वर्ष भी 1936 ई० ही है । यह भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से निकली थी ।

'कुल्लीभाट' का प्रकाशन यों तो 1939 ई० में गंगापुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ से हुआ, लेकिन इसके पूर्व लखनऊ से ही निकलने वाली मासिक पत्रिका 'माधुरी' के 1938 के मार्च और अक्तूबर के अंक में इसके 5 परिच्छेद प्रकाशित हो चुके थे ।

'बिल्लेसुर बकरिहा' के प्रारम्भिक दो अंश कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'रूपाभ' के मार्च और अप्रैल 1939 ई० के अंक में निकले । लेकिन पुस्तकाकार इसका प्रकाशन 1942 ई० में युग-मंदिर, उन्नाव से हुआ ।

'चोटी की पकड़' नामक उपन्यास 1946 ई० में किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ ।

'काले कारनामे' का प्रकाशन 1950 ई० में कल्याण मंदिर, प्रयाग से हुआ ।

निराला ने दो और उपन्यास लिखना शुरू किया था, लेकिन दुर्भाग्यवश वे पूरे न हो सके । 'चमेली' नामक उपन्यास के कुछ अंश फरवरी 1939 ई० के 'रूपाभ' नाम की पत्रिका में प्रकाशित हुए । 'इन्दुलेखा' नाम के उनके अधूरे उपन्यास के कुछ अंश 'ज्योत्सना' पत्रिका में निकले थे ।

निराला ने कुल चौबीस कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें 'देवर का इन्द्रजाल', 'दो दाने' और 'विद्या' नाम की कहानियों को छोड़कर उनकी बाकी सारी कहानियाँ 'लिली', 'सखी' और 'सुकुल की बीबी' शीर्षक कहानी संग्रह में संग्रहीत हैं। बाद में निराला ने 'सखी' कहानी संग्रह का नाम बदलकर 'चतुरी चमार' रखा। इसके साथ ही विभिन्न कहानी संग्रहों में से कुछ कहानियों को चुनकर 'देवी' नाम के कहानी संग्रह में संकलित किया गया।

'लिली' कहानी संग्रह का प्रकाशन गंगापुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ से फरवरी 1934 ई० में हुआ। 'सखी' का प्रकाशन अक्तूबर 1935 ई० में सरस्वती पुस्तक भंडार, लखनऊ से हुआ। 'सुकुल की बीवी', भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से 1941 ई० में निकली। 1945 ई० में 'सखी' कहानी संग्रह ही 'चतुरी चमार' के नाम से किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। 'देवी' का प्रकाशन 1948 ई० में राष्ट्रभाषा विद्यालय, वाराणसी से हुआ।

अब हम निराला के उपन्यास और कहानियों की आलोचनात्मक व्याख्या करेंगे।

<u>उपन्यास</u>

<u>'अप्सरा' :</u>

यह निराला का पहला उपन्यास है। इसमें सुन्दरी कनक, क्रांतिकारी देशभक्त चन्दन और अस्थिर-चित्त के मालिक राजकुमार की कहानी है। उपन्यास की घटनाएँ कलकत्ता में घटती हैं।

कनक एक स्वाधीन की बेटी है । उसकी इच्छा है कि वह कुलीन घराने की बहू बने । कनक को संगीत से प्यार है । कभी-कभी वह नाटकों में भी काम करती है । वह चरित्र युवती है इसलिए समाज में उसकी प्रतिष्ठा है । एक नाटक में वह शकुंतला की भूमिका में आती है और उसी नाटक में वह दुष्यंत की भूमिका निभाने वाले कुलीन परिवार के शिक्षित युवक राजकुमार के प्रति आकृष्ट होती है । राजकुमार ने एकबार पार्क में कनक को एक अंग्रेज अफसर की चंगुल से बचाया था । अंग्रेज अफसर पुलिस के द्वारा राजकुमार को परेशान कराता है । इसलिए नाटक की समाप्ति पर जब पुलिस राजकुमार को गिरफ्तार करने आती है तो कनक अपने प्रभाव और कौशल से उसे छुड़ा लेती है ।

कनक राजकुमार से शादी करना चाहती है । राजकुमार कनक के आलीशान मकान में सारी सुख-सुविधाओं का भोग करते हुए जी रहा है । वह भी कनक की ओर आकृष्ट है । एक दिन वह अपने मित्र चंदन की गिरफ्तारी की खबर सुनता है । यह खबर उसकी सोई हुई देश-भक्ति की भावना को जगा देती है और वह कनक के बहुत मना करने पर भी सारी सुख, सुविधाएँ छोड़कर चंदन और उसके परिवारवालों की मदद के लिए निकल जाता है । कनक इस घटना से बहुत दुखी रहने लगती है । कनक की माँ सर्वेश्वरी कनक की उदासी दूर करने के लिए उसे विजयपुर के राजकुमार के यहाँ 'महफिल' करने को कहती है । कनक इसके लिए तैयार हो जाती है । वहाँ महफिल के बाद विजयपुर का राजकुमार उसे अपनी भोग-लिप्सा का शिकार बनाना चाहता है, लेकिन ऐन वक्त पर चंदन और राजकुमार कनक की रक्षा करते हैं । उपन्यास के

अंत में कनक और राजकुमार का मिलन होता है और चंदन राजद्रोह के अपराध में पुनः गिरफ्तार होता है ।

इस उपन्यास में कनक- राजकुमार के प्रेम-प्रसंग काफी जगह घेरते हैं । ''किंतु कनक राजकुमार का संबंध केवल छायालोक का संबंध नहीं है । उसमें निराला कुछ ऐसी पेचीदगियाँ पैदा करते हैं जो छायालोक की नहीं वास्तविक जीवन की हैं, जो स्त्री-पुरुष के संबंधों में उलझन उभारकर उनके जीवन को नरक बना देती हैं । राजकुमार कनक के सामने स्वयं को पराजित अनुभव करता है । ...... राजकुमार के मन में लज्जा, घृणा प्रेम के परस्पर विरोधी भाव उथल-पुथल मचा देते हैं । कभी-कभी उसे कनक से घृणा भी हो जाती है । राजकुमार का अन्तर्द्वन्द्व उपन्यास को छायालोक से थोड़ा नीचे उतार लाता है ।''[1]

राजकुमार अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाला युवक नहीं है —यह उसके चरित्र की कमजोरी है । वह किसानों का संगठन करके देश को स्वाधीन बनाने की प्रतिज्ञा करता है, लेकिन कनक के मोह में उसकी क्रांतिकारी वृत्तियाँ सो जाती हैं ।

उपन्यास में किसान-जमींदार संघर्ष मुखर होने को होता ही है कि कल्पना उसे अपने रंग में रंग देती है । फलतः ग्रामीण जीवन, किसानों का दुख-दर्द और जमींदारी शोषण का चित्र पूरी तरह उभरकर नहीं आ पाता है।

अलका :

'अलका' में निराला ने किसानों के शोषण, उनकी अज्ञानता, जमींदारी

1- डॉ0 रामविलास शर्मा -निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ0 463
द्वितीय संस्करण, 1981

कुचक्र, विश्वयुद्ध से उत्पन्न महामारी का चित्रण किया है । उपन्यास का आरंभ महामारी के चित्रण से होता है । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत के अनेक गाँवों में महामारी फैली हुई है । इसी महामारी की चपेट में उपन्यास की नायिका शोभा का पूरा परिवार आ जाता है । शोभा की शादी बचपन में ही हो गयी थी । उसका पति विजय बम्बई में नौकरी की तलाश में चला गया । इधर अनाथ शोभा अपने पड़ोसी प्यारेलाल के घर में आश्रय लेती है । शोभा की मजबूरियों से फायदा उठाकर उसी गाँव का ताल्लुकेदार मुरलीधर शोभा को उठवाकर अपने घर लाना चाहता है । राजा की इस साजिश में जिलेदार महादेव और प्यारेलाल भी शामिल हैं । शोभा की सहेली राधा शोभा को राजा की साजिश की खबर देती है । शोभा पूजा के बहाने गाँव छोड़कर चली जाती है । शोभा भटकती हुई उच्च शिक्षा प्राप्त सच्चरित्र एवं मानवीय गुणों से युक्त जमींदार रमेशंकर के घर लखनऊ में शरण लेती है । रमेशंकर उसे पुत्री तुल्य समझते हैं और उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध करते हैं । यहाँ आकर शोभा का कायाकल्प होता है । उसका नाम अलका रखा जाता है । गाँव की यह अनाथ अशिक्षित लड़की अब एक कुशल, समझदार और शिक्षित नारी बन जाती है । वह रमेशंकर से देश की वर्तमान अवस्था पर बात करती है, देश के उत्थान के लिए काम करती है । कुलियों के मुहल्ले में जाकर वह स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाती है ।

विजय शोभा के अनाथ होने की खबर सुनकर शोभा के गाँव जाता है, लेकिन वहाँ उसे खबर मिलती है कि शोभा किसी के साथ भाग गयी । इसके बाद विजय अपना नाम बदलकर प्रभाकर रख लेता है और राष्ट्रीय स्वाधीनता

आन्दोलन में कूद पड़ता है । वह और उसका मित्र अजित गाँव-गाँव जाकर किसानों को संगठित करते हैं, जमींदारों — ताल्लुकेदारों की साजिश से भोले-भाले किसानों को वाकिफ कराते हैं और उन्हें जमींदारों के खिलाफ आन्दोलन चलाने की प्रेरणा देते हैं । लेकिन किसान अशिक्षित हैं, अपने वर्ग-हित की उन्हें सही पहचान नहीं है, इसलिए वे जमींदार के खिलाफ एकजुट नहीं होते । किसानों की इस कमजोरी से फायदा उठाकर जमींदार किसानों में फूट डलवा देता है और विजय और अजित को गिरफ्तार करवा देता है ।

एक वर्ष के बाद जेल से छूटने पर विजय और अजित पुनः देश-सेवा में लग जाते हैं । इसी क्रम में विजय की मुलाकात अलका से होती है । लखनऊ आने के बाद भी मुरलीधर अलका का पीछा भी नहीं छोड़ता । वह स्नेहशंकर के मकान की बगल में रहने लगता है । वह अलका को प्रतिदिन कुलियों के मुहल्ले में अकेली आते-जाते देखता है । एक दिन वह अलका के अपहरण की योजना बनाता है । एक रात जब अलका पढ़ाकर लौटने लगती है तभी मुरली-धर और उसके आदमी उसे उठाकर गाड़ी में बैठा लेते हैं । अलका अपनी सुरक्षा के लिए हमेशा पिस्तौल अपने साथ रखती है । उनकी मंशा समझकर अलका कार में ही मुरलीधर को गोली मार देती है और स्वयं बेहोश होकर गिर पड़ती है । ऐन-वक्त पर प्रभाकर उसकी मदद करता है और उसे उठाकर स्नेहशंकर के घर पहुँचा देता है । अंत में अलका और प्रभाकर का मिलन हो जाता है ।

'अलका' में ग्रामीण जीवन, किसानों के शोषण, उनकी अज्ञानता, दुख-दर्द का अधिक चित्रण हुआ है । उपन्यास में निराला पूँजीपतियों, रईसों और

तालुकेदारी तथा धन-लोलुप व्यक्तियों की भर्त्सना करते हैं । सामाजिक जीवन की रूढ़ियों तथा उसके तोड़ने के क्रम में आने वाली कठिनाइयों का भी चित्रण किया गया है । कभी-कभी निराला के काल्पनिक कथापूर्ति के सपने रचने की प्रवृत्ति हावी होने लगती है, तभी निराला सचेत हो जाते हैं । इस संदर्भ में डा० रामविलास शर्मा का कहना है -''अलका में छायालोक कमजोर है, लेकिन यथार्थवाद पूरी ताकत से उभरकर नहीं आया ।''[1]

प्रभावती :

यह निराला का ऐतिहासिक उपन्यास है । निराला ने इस उपन्यास की भूमिका में इसे 'रोमांटिक उपन्यास' की संज्ञा दी है । उपन्यास की कथा-वस्तु - पृथ्वीराज-जयचंद्र कालीन है ।

दलमऊ के राजा महेश्वर सिंह की पुत्री प्रभावती, लालगढ़ के राजकुमार देव से छिपकर शादी कर लेती है । प्रभावती के पिता ने मणिपुर के राजा बलवंत सिंह को कन्या देने का वचन दिया था । प्रभावती की शादी की खबर पाते ही बलवंत सिंह देव को गिरफ्तार कर मणिपुर ले आते हैं । राजकुमार देव की गिरफ्तारी के समय बलवंत सिंह की बहन यमुना अपने भाई से लड़ती है और देव के पकड़े जाने पर प्रभावती की रक्षा का भार उठाती है । यमुना को बलवंत सिंह ने देश निकाला दे दिया है, क्योंकि यमुना ने भाई की मर्जी के खिलाफ एक वीर सैनिक वीरसिंह से शादी कर ली है । प्रभावती के पिता महेश्वर सिंह और बलवंत सिंह कान्यकुब्जेश्वर जयचंद के पास देव के पिता

1- डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना, पृ० 464 (भाग-2)

महेन्द्र पाल की शिकायत करते हैं और उन पर आरोप लगाते हैं कि उन्होंने अपने पुत्र के साथ मिलकर प्रभावती का अपहरण किया है । जयचंद महेन्द्रपाल को कैद कर लेते हैं, लेकिन वीर सिंह का शिष्य और उसकी प्रेमिका और जयचंद के दरबार की नर्तकी विद्या - महेन्द्रपाल को बंदीगृह से मुक्त कराते हैं ।

उधर राजकुमार देव बलवंत सिंह की बेटी बहन रत्नावली की देख-रेख में रखे गये हैं । रत्नावली देव से प्रेम करने लगती है । राजकुमार देव के प्रति रत्नावली के प्रेम की बात सुनकर प्रभावती उन दोनों के बीच से हट जाती है । सही बात की जानकारी मिलने के बाद जयचंद महेन्द्रपाल को रिहा कर देता है । राजा बलवंत सिंह को दो वर्ष के लिए मणिपुर से निष्कासित कर रत्नावली को मणिपुर के शासन का भार सौंपता है ।

उपन्यास के स्वयंवर का अंत कन्यकुब्जेश की पुत्री संयोगिता के स्वयंवर की घटना के साथ होता है । जब पृथ्वीराज संयोगिता को अपने घोड़े पर बिठाता है तभी प्रभावती पुरुष सैनिक के वेश में संयोगिता और पृथ्वीराज की रक्षा करते समय शहीद हो जाती है । जमीन पर गिरते ही उसकी जोराशी बिखर जाती है और उसका स्त्री-रूप सामने आता है । इस अवसर पर देव भी उपस्थित है । प्रभावती देव की चरण-रज पाना चाहती है और अस्फुट शब्दों में रत्नावली को अपना लेने को कहती है ।

इस उपन्यास में सामंती उत्पीड़न, विलासितापूर्ण जीवन और राजाओं के आपसी संघर्ष की आलोचना की गयी है । यमुना एक क्रांतिकारी युवती है । उसका कहना है कि विदेशी आक्रमणकारियों से मुकाबला करने के लिए छोटी-छोटी

बातों को लेकर आपसी संघर्ष को बंद करना और जनता को नये सिरे से संगठित करना आवश्यक है । यमुना किसानों को संगठित करती है, उन्हें उनके अधिकारों का बोध कराती है । इस उपन्यास में यद्यपि निराला जीवन के कटु-सत्य को उद्घाटित करते हैं, लेकिन उनकी दृष्टि वैभव के चित्रण के आसपास इतना घूमती है कि जीवन के सत्य सही रूप में उद्घाटित नहीं हो पाते ।

निरुपमा :

यह निराला का चौथा उपन्यास है । कहानी की घटनाएँ लखनऊ और उसके आस-पास के क्षेत्रों में घटती है । उपन्यास का नायक कृष्णकुमार लंदन से अंग्रेजी में डी०लिट्० की उपाधि लेकर भारत लौटता है । लेकिन उसकी प्रतिभा की यहाँ कद्र नहीं होती । बंगालियों से प्रतिद्वन्द्विता के कारण तथा सिफारिश के अभाव में उसे कलकत्ता में नौकरी नहीं मिलती । वह लखनऊ आ जाता है । उसे "श्रम की प्रतिष्ठा" (डिगनिटी आफ लेबर) में विश्वास है, इसलिए वह जीविकोपार्जन के अन्य साधन के अभाव में जूता-पालिश का काम शुरू करता है । इसी क्रम में उसकी मुलाकात निरुपमा नाम की युवती से होती है । निरुपमा जमींदार घराने की है । अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद वह अपने मामा योगेश बाबू के यहाँ रहती है । उसके ममेरे भाई सुरेश का दोस्त यामिनी निरुपमा से शादी करना चाहता है ।

कुमार की माँ और भाई गाँव में रहते हैं । कुमार का गाँव निरुपमा की जमींदारी के अन्तर्गत आता है । अपनी माँ और भाई के निर्वाह के लिए कुमार हर महीने पैसे भेजता है । कुमार के पैसे की बात जानकर

गाँव के लोग माँ - बेटे का बहिष्कार कर देते हैं । उनका मकान यामिनी बाबू के यहाँ रेहन रखा है, बाग-जमीन से, निरुपमा की जमींदारी संभालने वाले सुरेश बाबू ने बेदखल कर दिया है । निरुपमा एक बार गाँव जाती है । वहाँ उसे सारी बातों का पता चलता है । वह अपने व्यवहार से कुमार की माँ और भाई का दिल जीत लेती है । निरुपमा उनका मकान, बाग और जमीन वापस दिला देती है ।

इस बीच निरुपमा की एक सहेली कमल कुमार की ओर आकृष्ट होती है । निरुपमा से जब इस बात का पता चलता है तब वह उन दोनों के बीच से हटने के लिए यामिनी-हरण के साथ शादी करने के तैयार हो जाती है । लेकिन कमल और कुमार की माँ बड़े कौशल से यामिनीहरण की शादी उसकी भूतपूर्व प्रेमिका मिस सुशीला दुबे और निरुपमा की शादी कुमार से करा देती है ।

इस उपन्यास में बेरोजगारी, जमींदारों की हृदयहीनता, किसानों की स्थितियों का चित्रण करते हुए निराला श्रम की प्रतिष्ठा की भी स्थापना करते हैं । लेकिन उपन्यास में किसानों के दुख-दर्द की अपेक्षा निरुपमा - कुमार का प्रेम-प्रसंग अधिक जगह घेरता है ।

<u>कुल्लीभाट :</u>

यह एक संस्मरणात्मक उपन्यास है । कथा का केन्द्र निराला की ससुराल डलमऊ है । इसमें कुल्ली के जीवन के साथ-साथ निराला अपनी कथा भी कहते हैं । दोनों के प्रसंग एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं ।

कुल्ली एक साधारण आदमी है जो इक्का चलवाता है। निराला उसी के इक्के पर चढ़कर स्टेशन से ससुराल पहुँचते। इसी समय निराला की पहली मुलाकात कुल्ली से होती है। धीरे-धीरे मुलाकातों का सिलसिला बढ़ने लगा और परिचय घनिष्ठता में बदल जाता है। कुल्ली निराला को डलमऊ के ऐतिहासिक इमारतों की सैर कराते हैं। ससुरालवालों के मना करने के बावजूद निराला ने अछूत कुल्ली की संगत न छोड़ी।

डलमऊ से आने के बाद निराला अपनी साहित्य-साधना में लग जाते हैं। उधर कुल्लीभाट धीरे-धीरे स्वाधीनता आन्दोलन में सम्मिलित होते हैं और कांग्रेस के कार्यकर्त्ता बन जाते हैं। वे स्वयंसेवक भर्ती करते हैं। उनके लिए जाति-पांति का कोई मोल नहीं है। वे मुसलमान महिला से प्रेम-विवाह करते हैं, बिंदा खटिक की बीमार दुलहिन की सेवा करते हैं, अछूत बच्चों के लिए पाठशाला खोलते हैं। इसके लिए वे देश के बड़े-बड़े नेताओं से आर्थिक मदद माँगते हैं, लेकिन उन्हें सहायता नहीं मिलती। फिर भी वे अकेले दम मैदान में डटे रहते हैं। बाद में कुल्ली को गरमी की बीमारी हो जाती है। निराला उनके लिए चंदा इकट्ठा करते हैं, उनका इलाज कराते हैं, लेकिन कुल्ली को बचाने में असफल होते हैं। कुल्ली की मृत्यु पर एक विशाल जनसमूह उन्हें श्रद्धांजलि देता है, कांग्रेसी नेता जुलूस निकालते हैं।

कुल्ली की मृत्यु से सबसे ज्यादा दुखी निराला होते हैं। वे उसकी शवयात्रा में भी नहीं जा पाते, जड़वत् अपनी जगह बैठे रहते हैं। दस दिन के बाद वे कुल्ली की पत्नी को देखने जाते हैं। कुल्ली के एकादश के दिन जब

अन्य पंडित समाज के डर से कुल्ली की मुसलमान पत्नी के घर नहीं जाते तब निराला सारी सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर कुल्ली के घर भोजन करते हैं।

कुल्लीभाट में निराला ने अपनी किशोरावस्था, विवाह, गौने, परिवार के नाश तथा गाँव घर के वातावरण का कलात्मक चित्रण किया है। "निराला ने बड़ी खूबी से इस उपन्यास में यह दिखलाया है कि चरित्र का निर्माण जनान्दोलनों में होता है। जनान्दोलन मनुष्य के चरित्र को उसकी कमजोरियों और विकृतियों से मुक्त करके उसे अत्यंत उदात्त स्तर पर पहुँचा देता है।"[1] निराला ने समाज-द्वारा उपेक्षित इस पात्र में ऐसे-ऐसे गुण ढूंढ निकाले हैं, जिनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। कुल्ली में उन्हें एक प्रखर व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। समाज के व्यंग्य-विद्रूप को सहकर वे ऐसा काम करते हैं जो समाज के लिए कल्याणकारी हो। कुल्ली के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे दूसरों के दोष अपने ऊपर ले लेते हैं। वे सोचते हैं कि हिन्दुस्तान की दुरावस्था का सबसे बड़ा कारण यह है कि आदमी-आदमी के प्रति जरा भी सहनशील नहीं है। वह अपने लिए तो सब कुछ चाहता पर दूसरों को जरा भी स्वतंत्रता देना नहीं चाहता। कुल्ली में छल-कपट नहीं है, वह स्पष्टवादी हैं इसलिए उन्हें अपने जीवन में बहुत संघर्ष करना पड़ता है। उनका सारा जीवन समाज से लोहा लेने में बीत जाता है।

कुल्ली नेताओं की तरह भाषण नहीं देते हैं, वे सच्चे स्वयंसेवक की तरह गाँव में घूम-घूम कर कांग्रेस का प्रचार करते हैं। कुल्ली की राजनीतिक

1- डा० नन्दकिशोर नवल -निराला रचनावली- भाग-4,पृ० 11,प्रथम संस्करण, 1983

और सामाजिक चेतना प्रखर है । वे यह समझते हैं कि सिर्फ जेल जाने से ही देश को आजादी मिलने वाली नहीं है, इसलिए ~~इसके अतिरिक्त~~ यहाँ के सामान्य-जन को संगठित करना होगा । इसके लिए वे अपने गाँव लखनऊ में अछूतों को शिक्षित करने का बीड़ा उठाते हैं । लेकिन इस काम में काँग्रेस के बड़े-बड़े नेता भी उनकी मदद नहीं करते हैं । कुल्ली ने निराला से कहा —""अछूत पाठशाला खोली है, तीस-चालीस लड़के आते हैं, धोबी, भंगी, चमार, डोम और पासियों के । पढ़ाता हूँ, लेकिन यहाँ के बड़े आदमी कहे जाने वाले लोग मदद नहीं करते । यहाँ के चेयरमैन साहब के पास गया वह जबान से नहीं बोले, बल्कि शहर के आदमी हैं । .... ये लोग उदासीन हैं, कुछ सरकारी अफसर हैं, वे बहलाया करते हैं । कैसे काम चले ? मदद कहीं से नहीं मिलती ।""[1] समाज की रूढ़ मान्यताएँ उन्हें मान्य नहीं हैं, जाति-पाँति का बंधन उनके लिए कोई अहमियत नहीं रखता, इसलिए वे समाज की परवाह न करके मुसलमान स्त्री से विवाह करते हैं । और जब हिन्दू समाज उसे नहीं स्वीकारता तो वे हिन्दू-समाज की आलोचना भी करते हैं । कुल्ली का सारा जीवन संघर्षमय रहा । कुल्ली ने देश और समाज की भलाई के लिए क्रांतिकारी काम किए, लेकिन किसी ने उन्हें इज्जत नहीं दी । मरने के बाद स्वयंसेवक उनके शव का जुलूस निकालते हैं, लेकिन तेरहवीं के दिन कोई उनके घर भोज करने नहीं जाता है ।

इस लघु उपन्यास में निराला ने पूरी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर चोट की है । नेताओं को नाम कमाने की ही परवाह रहती है ।

1- निराला — कुल्लीभाट, पृ0 67 , संस्करण 1978

समाज के उच्च-वर्ग निम्नवर्ग के प्रति असहिष्णु है । अछूत,उत्पीड़न और उपेक्षा के शिकार हैं और जो इनकी सेवा करने का व्रत लेता है वह उच्च-वर्ग वालों की आँखों में चुभने लगता है । इसलिए निराला कहते हैं कि कुल्ली के जीवन के महत्व को समझने वाला अब तक एक ही पुरुष संसार में आया है । वह है – गोर्की ।

बिल्लेसुर बकरिहा :

इस लोककथा में निराला ने कथा के नायक बिल्लेसुर की जिजीविषा और उसके लिए संघर्ष का चित्रण किया है ।

इस कथा के प्रारंभ में निराला ने बिल्लेसुर के पूरे परिवार का परिचय दिया है । बिल्लेसुर चार भाई हैं । चारों अपने में मस्त । उनके दो बड़े भाई मन्नी और दुलारे भरा-पूरा परिवार छोड़कर परलोक सिधार गये । ललई जीवित रहने के लिए रतलाम में संघर्षरत है । गाँव में जीविकोपार्जन का अन्य साधन न पाकर बिल्लेसुर बर्द्वान पहुँचते हैं । वहाँ वे महाराज बर्द्धवान के जमादार सतीदीन सुकुल के घर शरण लेते हैं । यहाँ वे जीतोड़ परिश्रम करते हैं तब कहीं जाकर दो जून रोटी नसीब होती है । घर का सारा काम करने के साथ ही वे तहसील में चिट्ठियाँ बाँटते हैं, इससे उन्हें थोड़े पैसे मिल जाते हैं । जमादार की पत्नी उन्हें व्यंग्य-वाणों से बेधती है, बिल्लेसुर चुपचाप सह जाते हैं । पुलिस में भर्ती होने की कोशिश करते हैं । वे कद में छोटे हैं इसलिए चमरौधे में रूई भरकर ऊँचे दिखने का प्रयास करते हैं, लेकिन नौकरी तब भी नहीं मिलती । सतीदीन की पत्नी को संतान नहीं होती थी । संतान

प्राप्ति के लिए जब वे जगन्नाथपुरी जाने लगती है तो बिल्लेसुर को भी अपने साथ ले जाती है । वहाँ बिल्लेसुर जमादार से गुरुमंत्र लेते हैं लेकिन बाद में एक दिन कंठीमाला और गायत्री मंत्र गुरुआइन को सौंपकर अपने गाँव चले आते हैं ।

गाँव आकर बिल्लेसुर बकरियाँ खरीदते हैं और उसे ही अपनी जीविकोपार्जन का साधन बनाते हैं । लेकिन गाँव वालों को उनका सुखी रहना अखरता है । वे बिल्लेसुर को बकरिहा कहकर चिढ़ाते हैं । बदले में बिल्लेसुर अपनी बकरी के बच्चों के नाम वही रखते हैं जो चिढ़ाने वालों के हैं । गाँव में शोर मच जाता है कि बिल्लेसुर सोने की ईंट लेकर आये हैं । उनका पड़ोसी त्रिलोचन सुंदर लड़की से ब्याह कराने का प्रलोभन देकर उन्हें ठगना चाहता है । त्रिलोचन ही नहीं जमींदार से लेकर पासियों तक सभी बिल्लेसुर को चबा जाने को तैयार हैं । ''गाँव के जितने आदमी थे अपना कोई नहीं, जैसे दुश्मनों के गढ़ में रहता हो ।''[1]

गाँव में बिल्लेसुर अकेले हैं । लड़के उनके बकरे मारकर खा जाते हैं, इसलिए बिल्लेसुर अपने बकरों की रखवाली की जिम्मेदारी मठवीर जी को सौंपते हैं । एक दिन जब उनका एक प्यारा बकरा नहीं मिलता तो क्रोध में भरे हुए मठवीर की मूर्ति के पास जाकर 'आँखों में अग्नि मिलाए हुए मठवीर के मुँह पर वह डंडा दिया कि मिट्टी का मुँह गिली की तरह

1- निराला – बिल्लेसुर बकरिहा (निराला रचनावली, भाग-4), पृ० 101, प्रथम संस्करण 1983

टूटकर बाँध भर के पसले पर जा गिरा ।"[1] इस प्रपंच से भरे संसार को देखकर बिल्लेसुर की सारी आस्था खंडित हो जाती है । तंग आकर बिल्लेसुर जमींदार से थोड़ी जमीन लेकर खेती करना शुरू करते हैं । हल-बैल के अभाव में फावड़े से खुद खेत गोड़ते हैं और उसमें शकरकंद लगाते हैं । फिर अपने भाई मन्नी की सास को पटाकर उनके गाँव की एक लड़की को धूमधाम से ब्याहकर ले आते हैं ।

यह दिन देखने के लिए बिल्लेसुर को बहुत संघर्ष करना पड़ा है । (बिल्लेसुर जाति के यद्यपि ब्राह्मण हैं लेकिन जीवित रहने के लिए वे शूद्रों के काम – बकरी पालन को अपनाते हैं; बिल्लेसुर जीवन की विषमताओं से हार नहीं मानते । निराश होकर बैठना बिल्लेसुर के चरित्र में नहीं है । "दुख का मुँह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरत को कई बार चुनौती दे चुके थे ।"[2] इसलिए विषम परिस्थितियों में भी वे अपने जीवन का रास्ता ढूँढ़ निकालते हैं । उनके लिए जीवन फूलों की शैया नहीं, रण-क्षेत्र है, ऐसा रण क्षेत्र जिसमें हर हालत में उन्हें विजय प्राप्त करना है । "बिल्लेसुर इस जीवन संग्राम में अकेले हैं । बिल्लेसुर के मन के आस-पास कोई ईश्वर नहीं, कोई धार्मिक आस्था नहीं, केवल दुख है जो इतना सजीव है कि और किसी देवता को पास फटकने नहीं देता ।"[3]) दुश्मनों के गढ़ में बिल्लेसुर अकेले हैं और इस अकेलेपन में किसी

1- निराला – बिल्लेसुर बकरिहा (निराला रचनावली, भाग-4) पृ० 104

2- वही, पृ० 104

3- डा० रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना, पृ० 477

का विश्वास नहीं करते, कुछभी था भी नहीं ।

निराला ने बिल्लेसुर को 'सुकरात' की उपाधि दी है । वह सुकरात के ज्ञान न थी, पर उसकी फिलासफी थी । वे प्रतीकों का अर्थ नहीं निकालते। हर चीज को व्यवहार की कसौटी पर परखते हैं । धार्मिक आस्था इस कसौटी पर खरी उतरी तब ठीक, नहीं तो बिल्लेसुर के लिए उसका कोई महत्व नहीं। सतीदीन नौकरी नहीं दिला सके, इसलिए उनका दिया गायत्री मंत्र और कंठीमाला गलत है, महावीर जी बकरियों की रक्षा न कर सके इसलिए महावीर जी गरीबों के सहायक नहीं । वस्तुतः बिल्लेसुर विरोधी संसार में देवी-देवताओं के प्रति टूटी आस्था के प्रतीक हैं ।

निराला इसमें सामाजिक संबंधों पर भी ध्यान देते हैं । जब बिल्लेसुर रोजी-रोटी की चिंता में थे तब किसी ने उनपर ध्यान नहीं दिया और आज जब उनके पास थोड़े रुपये हो गये हैं तो त्रिलोचन और रामदीन ही उनके पीछे नहीं लगे रहते हैं, पड़ोस के जमींदार भी बिल्लेसुर को प्रणाम करते हैं । "पड़ोस के जमींदार ठाकुर तहसील से लौटते हुए दरवाजे से निकले । बिल्लेसुर को देखकर प्रणाम किया ।"[1] वस्तुतः निराला इस घटना के माध्यम से यह बतलाना चाहते हैं कि आम आदमी की कद्र नहीं है, पैसे की ही कद्र है । बिल्लेसुर ने बकरीपालन का काम शुरू किया तो रामदीन ने व्यंग्य करते हुए कहा "ब्राह्मण होकर बकरी पालेंगे ?"[2]

1- निराला - बिल्लेसुर बकरिहा (निराला रचनावली, भाग-4), पृ0 120

2- वही, पृ0 99

इस कथा में निराला ने ~~सामाजिक~~ प्रश्नों पर भी ध्यान दिया है, ब्राह्मणों में आपसी ऊँच-नीच के भेदभाव का भी चित्रण किया है।

<u>चोटी की पकड़ :</u>

इस उपन्यास की भूमिका में निराला ने लिखा है कि वे स्वदेशी आन्दोलन को विषय बनाकर चार खंडों में उपन्यास लिखना चाहते हैं। लेकिन इस उपन्यास का एक ही खंड लिखा गया।

इसमें राजे-रजवाड़ों के भोग विलास, अंग्रेज हाकिमों, तल्लुकेदारों, पुलिस अफसरों और उनके हिन्दू-मुसलमान चाकरों से त्रस्त भारतीय जनता का यथार्थ चित्रण हुआ है। साथ ही इसमें एक जवान विधवा औरत की भी कथा है। विधवा (बुआ) के भतीजे की शादी जागीरदार की लड़की से होती है। भतीजा घरजमाई बनकर अपनी ससुराल में रहने लगता है। उसके साथ अनाथ बुआ भी रहने लगती है, लेकिन उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। भतीजे की सास, पत्नी और यहाँ तक कि उनकी दासी मुन्नी भी बुआ को प्रताड़ित करती है। एक दिन योजना बनाकर राजा की पुलिस और रुस्तम नाम का नौकर बुआ की इज्जत लूटना चाहता है। लेकिन सही वक्त पर प्रभाकर नामका युवक बुआ की मदद करता है और उसे अपने साथ ले जाता है। प्रभाकर अंग्रेजों की बंगभंग की नीति के खिलाफ जनता को संगठित करता है। इस काम में वह बुआ को भी शामिल कर लेता है।

उपन्यास में ~~खलनायक~~ राजा राजेन्द्र प्रताप हैं। वे एक ओर किसानों के संगठनकर्ता प्रभाकर को अपनी हवेली में रखते हैं दूसरी ओर किसानों का

शोषण करते हैं । एजाज के साथ रंगरेलियाँ मनाते हैं । उसके कर्मचारी प्रायः दुश्चरित्र, लोभी, निकम्मे और दगाबाज हैं । वे गाँव की बहू-बेटियों की इज्जत लूटते हैं । प्रजा उनके इस अत्याचार को सहने के लिए विवश है । जो कोई उनके खिलाफ आवाज उठाने की कोशिश करता है उसे कड़ी-से-कड़ी यातना दी जाती है । जमींदारों के जुल्म का उल्लेख करते हुए निराला ने लिखा —''किसी ने लगान नहीं दिया,वह गरीब है । विश्वास देकर बुलाया गया कि सरकार से अपना दुखड़ा रोए । आने पर अँधेरी कोठरी में ले जाया गया । वहाँ ऐसी मार पड़ी कि उसका दम निकल गया ।''[1]

इस उपन्यास में निराला ने सामंतों के वैभव, भोग-लिप्सा और किसानों की यातना का यथार्थ चित्रण किया है । सामंत साम्राज्यवादी शक्तियों से मिलकर किस प्रकार किसानों का शोषण कर रहे थे, यह कहानी उसका दस्तावेज है । विदित है कि स्वाधीनता आन्दोलन में सामंतों ने भी भाग लिया था । लेकिन उनके इस कार्य के पीछे देशभक्ति नहीं, अपना स्वार्थ काम कर रहा था — निराला ने ऐजाज़ और राजा महेन्द्रप्रताप के माध्यम से इस तथ्य का भी उद्घाटन किया है । उपन्यास में सामंतों के दोहरे [illegible] चरित्र को खोलकर रख दिया गया है । [illegible] महेन्द्र प्रताप एक ओर तो स्वाधीनता आन्दोलन में परोक्ष रूप से शामिल होते हैं लेकिन दूसरी ओर किसानों के शोषण की प्रक्रिया को पूर्ववत् बरकरार रखते हैं । उपन्यास के संबंध में डा०रामविलास शर्मा का कहना है —''यह उपन्यास कथासूत्र में उलझा होने पर भी अपार-

---

1- निराला - चोटी की पकड़ (निराला रचनावली, भाग-4), पृ0 15।

निरुपमा कौरव से ज्यादा शक्तिशाली है । उपन्यास एक फैंटेसी है, जिसमें त्रास की भावना विभिन्न रूपों में प्रकट होती है ।- - - - निराला ने बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन के दौर पर कथा लिखने का प्रयास किया है, देशी रियासत को कथा-क्षेत्र बनाया है । सामंती वैभव आकर्षित करता है, साथ ही वह अद्भुत त्रास की सृष्टि भी करता है । ऐसी प्रच्छन्न पीड़ा निराला के दूसरे उपन्यास में नहीं है ।--[1]

<u>कुल्ली भाट</u>:

इस उपन्यास में ग्रामीण परिवेश, जमींदारी दावपेंच और देशभक्त नवयुवक मनोहर की लगन का चित्रण किया गया है ।

मनोहर एक शिक्षित युवक है । वह औसत आमदनी वाले परिवार का लड़का है । गाँव में उसकी खेतीबारी है, गाय-भैंसे हैं और गाँव में उसके परिवार की इज्जत है । पहले मनोहर अपने पिता के साथ रहकर बम्बई में संस्कृत पढ़ता है, लेकिन बम्बई का पानी रास न आने के कारण वह गाँव चला आता है । वह रोज पास के गाँव में उस्ताद रामसिंह से पहलवानी सीखने जाता है । लेकिन उस गाँव के जमींदार यमुनाप्रसाद को यह बात खटकती है । वह रामसिंह और मनोहर को एक चोरी के इल्जाम में फँसा देता है । उस्ताद से दो सौ रुपया लेकर पुलिस उसे छोड़ देती है । मनोहर भागकर काशी पहुँचता है, जहाँ वह शूद्रों को शिक्षित करने का भार लेता है । वहाँ उसकी मुलाकात साम्राज्यवादी दमन से क्षुब्ध विधवा रानी विमला से होती है ।

1- डॉ० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ० 465

विमला मनोहर को आर्थिक मदद देती है, जिससे मनोहर निर्धन किसानों को शिक्षित और संगठित करता है। वह लौटकर अपने गाँव नहीं जाता फिर भी उसके गाँव के लोग उसे अपना समझते हैं और उसकी इज्जत करते हैं और वे उसी पर गर्व करते हैं। वे मनोहर के मित्र को ढाढ़स बंधाते हुए कहते हैं ''तुम्हारी मूँछ रख ली, तुम्हारा सर ऊँचा किया, वह हमारा अपना भैया है, उसको कोई डर नहीं, हम जानते हैं कि लोगों ने उसको रहने न दिया, लेकिन वह क्या है जो सर फोड़कर टूटे, वह हमारी पुकार है, हमारे आँसू से टपक कर भाप बनकर उड़ गया है, कभी खुशी की बारिस लायेगा।''[1]

इस उपन्यास में निराला ने देहाती सामंतों के शोषक रूप को सामने रखा है। उनके इस शोषण में पुलिस-व्यवस्था की भी सक्रिय भूमिका थी, निराला ने यह तथ्य भी सामने रखा है। पहलवान रामसिंह और मनोहर को चोरी के इल्जाम में फँसाकर जमींदार रुपया पाना चाहता है। मनोहर तो बेइज्जती के डर से भागकर बनारस आ जाता है, लेकिन पहलवान रामसिंह जमींदार की गिरफ्त में आ जाता है। थानेदार और जमींदार दोनों योजना बनाते हैं कि 'पहलवान रामसिंह से पाँच सौ रुपये लिए जाएँ'[2] वे रामसिंह से कहते हैं —''अगर हमारी मार्फत यह रुपये आप दे देंगे, तो मामला ले-देकर दबा दिया जायगा, नहीं तो आप फँसेंगे, गाँव में आपका मददगार न खड़ा होगा।''[3] आगे

1- निराला – कलि कारनामे (निराला रचनावली -भाग-4), पृ0 260-61

2- वही, पृ0 24।

इनके कुकृत्यों की चर्चा करते हुए निराला ने लिखा ''जमींदार और महाजन भी इस रुपये में शरीक होंगे, कहते हैं, रिश्वत का रुपया लाखों और करोड़ों तक पहुँचता है और बड़े-से-बड़ा इसका साझीदार है, इस काम में पुलिस के मददगार जितने आदमी हों, वे सरकार के आदमी कहे जाते हैं, उनसे इसी तरह के काम लिए जाते हैं, जब कमजोर पड़े तब ये नेकनाम धीरे-धीरे बदमाश करार दिए जाते हैं औरबांधकर जेल भेज दिए जाते हैं।''[1] वस्तुतः निराला ने जमींदारी और पुलिस-व्यवस्था की जिस साँठ-गाँठ का चित्रण इस उपन्यास में किया है, उसे आज स्वाधीन भारत में भी देखा जा सकता है। आज की न्याय-व्यवस्था दोषी की रक्षक है, निर्दोष की भक्षक।

इस उपन्यास के संबंध में ज्ञातव्य है कि यह निराला का अधूरा उपन्यास है।''[2] अगर उपन्यास पूरा हो जाता तो शायदऔर भी प्रभावशाली होता। निराला जिस प्रकार मनोहर का चरित्र विकसित कर रहे थे, उससे ऐसा लगता है कि वे ''मनोहर को एक क्रांतिकारी युवक के रूप में विकसित करना चाह रहे थे, जो शूद्रों और गरीब जनता – किसानों को विद्रोह के लिए संगठित कर शोषक जमींदारों और भ्रष्ट सत्ताधारियों के सिर पर वज्र की तरह टूटता और गरीब खेतिहर जनता के लिए खुशी की बारिश ला पाता।''[3]

1- निराला – काले कारनामे (निराला रचनावली, भाग-4), पृ० 243

2- डॉ० नंदकिशोर नवल – निराला रचनावली (भूमिका), भाग-4, पृ० 10

3- राजकुमार सैनी – साहित्य स्रष्टा निराला, पृ० 85, प्रथम संस्करण, 1981

चमेली :

निराला ने 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' की परंपरा का एक उपन्यास 'चमेली' लिखना शुरू किया था, लेकिन दुर्भाग्य से यह पूरा न हो सका ।

इस उपन्यास का आधार भी ग्रामीण जीवन है । उपन्यास के पहले अध्याय में गाँव के सीधे-सादे मेहनती किसान, गरीब विधवा और पुलिस के अत्याचारों का वित्रण हुआ है । उपन्यास की नायिका बहुत विधवा चमेली अपने खेत में गहनी कर रही है तभी सिपाही ठाकुर बख्तावर सिंह दुर्विचार से उसका हाथ पकड़ लेता है । चमेली सहायता के लिए मंगलदेव को बुलाती है । मंगलदेव आते ही बख्तावर सिंह की खूब पिटाई करता है । यह खबर सुनकर चमेली का पिता चमेली को कोसता है लेकिन उसकी माँ उसकी तरफदारी करती है । गाँव के जमींदार जो बख्तावर सिंह के भैयाचार हैं, मंगलदेव के खिलाफ कार्यवाही करने की धमकी देते हैं ।

दूसरे अध्याय में गाँव में फैले भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया गया है । गाँव के एक पंडित जी शिवदत्त राम त्रिपाठी हैं जिनका पेशा अदालत जाना, झूठ बोलना, मुकदमा लड़ना-लड़वाना, किसानों को सूद पर रुपया देना है । चरित्र के मामले में वह बहुत कमजोर हैं । वह अपने चौदह भाई की विधवा पत्नी से अवैध संबंध स्थापित करता है ।

इस उपन्यास में निराला की विद्रोही प्रकृति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी है । उनके मन में सदियों तक सतायी जाने वाली निम्न-जाति के प्रति सहानुभूति और उच्च-वर्ग के प्रति आक्रोश है । इसलिए उन्होंने चमेली और

महादेव जैसे चरित्रों की अवतारणा की है ।) उपन्यास का प्रारंभिक अंश जिसमें मढ़ुनी का दृश्य है बहुत ही स्वाभाविक और सजीव है ।

इंदुलेखा :

निराला ने इंदुलेखा नाम से एक उपन्यास लिखना शुरू किया था, लेकिन वह भी पूरा न हो सका । इस उपन्यास के जो अंश प्रकाशित हुए उनसे उपन्यास की कथा-वस्तु क्या होती, इसका अनुमान लगाना मुश्किल है । उपन्यास में इंदु, बंकिम, समर और विजय का वार्तालाप है जो कालेज के छात्र हैं ।

कहानियाँ

क्या देखा :

यह एक ऐसी युवती की कहानी है जो अनाथ हो जाने के बाद गाना गाकर अपनी जीविका चलाती है और जो इज्जत बचाने के लिए अपनी जान दे देती है ।

कहानी की प्रमुख पात्र हीरा के दिल में लेखक प्यारेलाल के लिए इज्जत है । वह मुजरा करती है । एक दिन मिस्टर हाँग नामक कुख्यात व्यक्ति उसके साथ जोर-जबरदस्ती करना चाहता है तो हीरा उसे मारकर बाद में आत्महत्या कर लेती है ।

इस कहानी के माध्यम से निराला ने नारी के दुर्गा-रूप को उभारा है । निराला अपनी रचनाओं के द्वारा नारी-विषयक सामंती मान्यताओं का खंडन करते हैं । नारी कोमलांगी है जरूर लेकिन आवश्यकता पड़ने पर वह चंडी का रूप भी धारण कर सकती है । वह अपने सतीत्व की रक्षा करने में

समर्थ है । हीरा उसी तरह की युवती है । लेकिन हीरा में एक कमजोरी है, वह डॉग को मारने के बाद स्वयं आत्महत्या कर लेती है । यह कहानी का कमजोर अंत है । अगर हीरा जीवित रहकर नारीसमाज के कल्याण का काम करती तो वह स्त्रियों के लिए आदर्श बन सकती थी ।

पद्मा और तिली :

(इस कहानी में अन्तर्जातीय विवाह की समस्या के चित्रण के साथ-साथ देशभक्ति और समाज-सुधार का संदेश दिया गया है ।)

पद्मा एक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट की बेटी है जो विलायत से बैरिस्टर बनकर लौटे राजेन्द्र से प्यार करती है । राजेन्द्र जज का बेटा है । लेकिन पद्मा के पिता नहीं चाहते कि उनकी लड़की राजेन्द्र से विवाह करे, क्योंकि राजेन्द्र क्षत्रिय है और वे ब्राह्मण । मरते समय वे पद्मा से प्रतिज्ञा करवाते हैं कि वह भिन्न जातिवाले युवक से शादी नहीं करेगी । पद्मा अपने वचन का पालन करती है । वह अविवाहित रहते हुए राजेन्द्र के साथ मिलकर देश-सेवा का व्रत लेती है ।

ज्योतिर्मयी :

इस कहानी में दहेजप्रथा, विधवा जीवन की व्यथा और भारतीय समाज की अनेक रूढ़ियों का सशक्त चित्रण हुआ है । ज्योतिर्मयी बाल-विधवा है । वह विजय से प्रेम करती है और उससे शादी करना चाहती है, लेकिन दहेज के लालच में पड़कर वह ज्योति से विवाह करने से कतराता है । विजय का मित्र

वीरेन्द्र उसकी अयात्त पर उसे झिड़कता है। वह दहेज की व्यवस्था कर ज्योतिर्मयी की शादी विजय से करा देता है। लेकिन ऐसे लालची परिवार में बहू बनकर आने पर ज्योति को ग्लानि होती है। अंत में वह सोचती है — "छिः यह मैंने क्या किया .... इससे मेरा वैधव्य शतगुण, सहस्रगुण अच्छा था।"[1] विजय के दब्बूपन पर निराला ने करारे व्यंग्य किए हैं, साथ ही दहेज के लालची लोगों का भी पर्दाफाश किया है।

कमला :

यह एक ऐसी स्त्री की कहानी है जिसे व्यभिचारी के षड्यंत्र के कारण पति ने छोड़ दिया है। संयोगवश कमला की ननद हिंदू-मुस्लिम दंगे के वक्त एक मुसलमान के द्वारा भ्रष्ट कर दी जाती है। इस घटना के बाद बिरादरी वाले कमला के ससुराल वालों को जाति से निकाल देते हैं। कमला अपनी ननद की शादी अपने भाई से करा देती है। इस प्रकार वह अपने अपमान का बदला भलाई करके ले लेती है।

कमला के रूप में निराला ने एक स्वाभिमानी स्त्री का चित्रण किया है। वह परित्यक्ता है फिर भी वह हताश और निराश नहीं होती, बल्कि अपने पति और ससुरालवालों से विचित्र बदला लेती है।

श्यामा :

इस कहानी में विधवा समस्या के साथ ही जमींदारी शोषण का भी

1- निराला — ज्योतिर्मयी (लिली कहानी संग्रह), पृ0 32 संस्करण 1978

चित्रण हुआ है । गरीब सुधुआ लगान के बादि सात रुपये न चुका पाने के कारण जमींदार की मार खाकर जान गँवाता है । उसकी विधवा लड़की श्यामा पंडित रामप्रसाद के बेटे बंकिम से प्रेम करती है । दयाराम के दबाव में आकर रामप्रसाद बंकिम को घर से निकाल देते हैं । बंकिम श्यामा के साथ गाँव से बाहर चला जाता है और उन्नति करता हुआ डिप्टी-कलेक्टर बन जाता है । एक दिन जमींदार दयाराम डाली सजाकर आते हैं, तब बंकिम की पत्नी श्यामा उन्हें अर्दली से अपमानित करवाकर बाहर निकलवा देती है । इस प्रकार वह दयाराम से अपने बाप की हत्या का बदला ले लेती है । 'अलका' और 'निरुपमा' की तरह इस कहानी में भी निराला पर इच्छापूर्ति के सपने रचने की प्रवृत्ति हावी रहती है । लेकिन इस कहानी में भारतीय किसानों की दुर्दशा का भी चित्रण हुआ है । सुधुआ भारतीयकिसान का प्रतिनिधित्व करता है । कहानी में किसान जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण हुआ है । इसके साथ ही सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति की चेतना को भी निराला ने दिखलाया है । बंकिम ब्राह्मण होकर सुधुआ चमार की लड़की श्यामा से विवाह करता है ।

प्रेमिका परिचय

यह एक व्यंग्य कहानी है, कहानी के लक्ष्य हैं — लखनऊ विश्वविद्यालय के बाबू प्रेम कुमार, जो नवाबी सभ्यता और उर्दू शायरी के रंग में डूबे हुए हैं । प्रेमकुमार लखनऊ में बी०ए० में पढ़ते हैं । शेरो-शायरी का उन्हें बेहद शौक है । इसी शौक की वजह से वे एक दर्जे में पाँच बार फेल होते हैं । फिर भी शेरो-शायरी की लत नहीं छूटती । यद्यपि प्रेमकुमार शादीशुदा हैं फिर भी तबीयत की रंगीनी क्वाँरों की तरह है । उनको सही रास्ते पर लाने के लिए

उनकी साली शांति के नाम से उन्हें पत्र लिखती है और अपना प्रेम प्रदर्शित करती है। वह प्रेमकुमार को अलग-अलग जगहों पर बुलाती है। प्रेमकुमार शांति से मिलने के लिए उसके बुलाये हर स्थान पर जाते हैं, लेकिन उन्हें हर बार निराशा हाथ लगती है। कहानी के अन्त में यह राज खुलता है कि शांति उनकी पत्नी का उपनाम है और उनकी साली ने उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिए सारा नाटक रचाया था।

इस कहानी में प्रेमकुमार के दोस्त शंकर की चारित्रिक विशेषताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। शंकर ब्राह्मण का लड़का है। अंग्रेजी से एम०ए० कर रहा है, लेकिन वह संस्कारों की पूरी रक्षा करने वाला है - "शंकर आर्य-सभ्यता के संकीर्ण दरवाजे के भीतर ब्राह्मणों के सिवाय दूसरी जाति को नहीं बैठने देता।"[1]

निराला ने इस कहानी के माध्यम से जहाँ एक ओर प्रेमकुमार जैसे रंगीन तबीयत के मालिक युवकों पर व्यंग्य करते हैं वहाँ वे प्रकारान्तर से यह भी कहना चाहते हैं कि देश की युवा पीढ़ी को अपनी ऊर्जा किसी रचनात्मक कार्य में खर्च करनी चाहिए।

हिरनी :

इस कहानी की घटना वास्तविक है। एक रानी हिरनी नाम की अनाथ बालिका को अपने रनिवास में रखती हैं। कुमारी रहने तक वह उसपर दयालु रहती हैं। हिरनी पर आसक्त अपने पुत्र रामकुमार की चरित्र रक्षा के

1- श्री निराला — प्रेमिका परिचय - लिली कहानी संग्रह, पृ० 83

लिए वे हिरनी का विवाह रामगुलाम नाम के कहार से कर देती हैं । सालभर के अन्दर ही हिरनी एक बच्ची की माँ बन जाती है । एक बार लड़की की बीमारी के कारण हिरनी रानी साहिबा की खिदमत में हाजिर नहीं हो पाती । इससे रानी साहिबा बिफर उठती हैं । वह हिरनी को पकड़वाकर उसे बुलवाती हैं और उसे मारती हैं, लेकिन तभी रानी साहिबा की नाक से खून बहने लगता है और वे मूर्छित हो जाती हैं ।

यद्यपि यह कहानी बहुत छोटी है, लेकिन थोड़े ही शब्दों में निराला ने बड़ी खूबी से राजाओं और रानियों की दुश्चरित्रता, उनके अत्याचार का पर्दाफाश किया है ।

परिवर्तन :

यह एक ऐसे राजा और राजकुमार की कहानी है, जिसे समय ने चाकर बना दिया है । राजा शत्रुघ्न सिंह किसी जमाने में महाराजा थे, लेकिन अब वे राजा महेश्वर सिंह की ड्योढ़ी के जमादार हैं और उनका दस वर्षीय पुत्र सूरज राजकुमारी परी का गुलाम । यहाँ दोनों बाप-बेटे को बड़ी यातना झेलनी पड़ती है । एक दिन वे दोनों महेश्वर सिंह का राज्य छोड़कर चले जाते हैं । थोड़े ही दिनों के बाद उनका खोया राज्य वापस मिल जाता है । संयोग से परी की शादी सूरज के साथ तय होती है और शत्रुघ्न सिंह अपनी वास्तविकता से परिचित कराते हुए महेश्वर सिंह की हृदयहीनता की चर्चा कर उन्हें लज्जित करते हैं ।

कहानी उन लोगों को लक्ष्य करके लिखी गयी है, जो धन को बहुत अहमियत देते हैं, साथ ही निराला यह भी कहना चाहते हैं कि व्यक्ति को 'पंचला'

का गुलाम नहीं होना चाहिए क्योंकि वह व्यक्ति को दंभी बना देती है ।

<u>अर्थ :</u>

इस कहानी में धार्मिक आस्थाओं को लेकर भक्त का अन्तर्द्वन्द्व, गाँव-बिरादरी वालों का षड्यंत्र, उनकी ठग विद्या, अर्थ को लेकर मानव-मन की कमजोरी और समाज में उसके महत्व आदि का चित्रण हुआ है । रामकुमार कुलीन ब्राह्मण परिवार का लड़का है । माता-पिता की जिन्दगी में वह ऐशो-आराम में रहता है । लेकिन उनकी मृत्यु के बाद जीवन-संग्राम में उतरने पर उसे जिन्दगी की कठिनाइयों का पता चलता है । पत्नी को मायके भेज कर वह अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए भगवान राम की खोज में चित्रकूट जाता है । राम की तलाश में भटकते-भटकते वह सूखकर काँटा हो जाता है । अन्त में उसे प्रच्छन्न रूप से ईश्वर का साक्षात्कार होता है । बाद में उसकी मुलाकात अपने मित्र से होती है और उसकी मदद से उसे नौकरी मिल जाती है । थोड़े ही दिनों में वह बहुत बड़ा उपन्यासकार बन जाता है और उसकी सारी समस्याओं का समाधान हो जाता है ।

भक्त रामचन्द्र की शरण में जाना चाहता है । लोगों से उसने सुना था कि कामद-गिरि पर्वत पर लक्ष्मण-सीता के साथ रामचन्द्र जी रहते हैं । राम को पाने के लिए वह पहाड़ पर चढ़ने का प्रण करता है । पहाड़ पर चढ़ने का अर्थ है मृत्यु या राम के दर्शन । वह अनेक बाधाओं को पार करता हुआ पहाड़ पर चढ़ता है लेकिन कामद-गिरि की चोटी तक पहुँच नहीं पाता क्योंकि वहाँ जाने का कोई रास्ता नहीं है । निराश होकर रामकुमार नीचे लौट आता है । एक महुए

के पेड़ के नीचे आराम करने के लिए बैठते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ता है । इसी बेहोशी की स्थिति में उसे ब्रह्म से साक्षात्कार होता है ''जब जागा तब दोपहर थी । देह फूल सी हल्की हो गई थी । इतनी स्वच्छता का उसे कभी अनुभव नहीं हुआ था ।''[1] वह जिज्ञासा करता है कि इस संसार में राम हैं या नहीं, तभी एक तोते की आवाज आती है — हैं, हैं । इसके बाद रामकुमार को लगा जैसे सारी पृथ्वी चक्कर काट रही है, पेड़ घूम रहे हैं वह संज्ञाहीन हो जाता है । होश आने पर रामकुमार को ज्ञान प्राप्ति होती है —''मन आज की विश्वप्रकृति के अद्भुत सत्य-परिचय में तन्मय था ।''[2] इस कहानी में निराला ने रामकुमार की जिस भाव-दशा का वर्णन किया है वह रहस्यवादियों की भाव-दशा से मेल खाती है । शरीर का लगभग अचेत हो जाना, सामने बाह्य-प्रकृति का लोप, अदृश्य-सत्ता से साक्षात्कार, मन में अभूतपूर्व उल्लास, प्रकाश का बोध— यह रहस्यवादियों की भाव-दशाएं हैं । वे रामकुमार की भाव-दशा को ब्रह्म-साक्षात्कार की समाधि दशा मानते हैं । फिर मन निरबल से अभ्यस्त अज्ञान वाले घर में जाना ही चाहता था । वह देहात्म-बोध अज्ञान है ; जब रामकुमार का शरीर निश्चल, आंखें निष्पलक थी — वह ब्रह्मज्ञान का क्षण था । इस कहानी के संबंध में डा० रामविलास शर्मा का कहना है —''..... सफलता वाले अंश को छोड़ दें तो तीन चौथाई कहानी बहुत जोरदार है ।..... सामाजिक वातावरण, प्राकृतिक परिवेश और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का ऐसा सफल चित्रण निराला के गद्य में अन्यत्र दुर्लभ है ।''[3]

1- निराला — अर्थ - लिली कहानी संग्रह, पृ० 78

2- वही, पृ० 79

3- डा० रामविलास शर्मा -निराला की साहित्य साधना-भाग-2, पृ० 457

न्याय :

यह कहानी पुलिस-व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करती है । कहानी का नायक राजीव एक घायल व्यक्ति को बचाना चाहता है, लेकिन पुलिस उसे ही हत्या के आरोप में पकड़ लेती है । बाद में उसकी प्रेमिका प्रतिमा उसे पुलिस के चंगुल से बचाती है ।

यह आजादी के बाद की पुलिस-व्यवस्था का भी नक्शा है । जनसाधारण को जितनी यातना ब्रिटिश शासन में पुलिस के द्वारा मिलती थी, आज भी स्थिति लगभग वैसी ही है । वर्तमान व्यवस्था में दोषी लोग तो गुलछर्रे उड़ाते हैं और निर्दोष व्यक्ति यातना पाते हैं । कहानी का कथ्य — यही है ।

स्वामी सारदानंद जी महाराज और मैं :

यह एक संस्मरणात्मक ललित निबंध है । इसकी शुरुआत आत्मकथात्मक ढंग से होती है । प्रारंभ में निराला महिषादल, प्रारंभिक जीवन-संघर्ष, महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की सहृदयता, सन्यासियों के साथ काम करने आदि घटनाओं का विस्तृत विवरण देते हैं । इस निबंध में निराला ने सन्यासियों के रूप, आकार, घर्रा के वातावरण आदि का सजीव चित्रण किया है । निबंध के अन्त में अपने सन्यासी बनने की रूपरेखा का वर्णन किया है ।

देवी :

देवी एक पगली भिखारिन की कहानी है । यह एक तरफ रेखाचित्र है दूसरी तरफ संस्मरण । निराला पगली भिखारिन के साथ ही अपनी कहानी भी कहते चलते हैं । कहानी का आरंभ आत्मालोचन और मोहभंग से होता है ।

पच्चीस साल की पगली एक बच्चे की माँ है । समाज द्वारा उपेक्षित पगली अपने दुध-मुँहे बच्चे को छाती से चिपकाए होटल के सामने जाड़ा, गरमी, वर्षा हर मौसम में खुले में पड़ी रहती है । प्रकृति की मारों से लड़ती हुई पगली जवानी ढलने से पूर्व ही मुरझा गयी है । निराला पगली को देखते हैं, वह उसकी और उसके बच्चे की भरसक मदद करते हैं । लेकिन एक निराला समाज की कितनी पगलियों की मदद कर सकते हैं ? यह समाज-व्यवस्था अच्छे-भले लोगों को पागल बना डालती है । पगली निर्विकार भाव से प्रकृति और व्यवस्था की मार को सहती है इसलिए निराला को उसमें देवी के दर्शन होते हैं, वह उन्हें नेपोलियन से भी अधिक वीर प्रतीत होती है । एक दिन एक नेताजी के जुलूस में पगली का बच्चा कुचलकर मर जाता है । नेता जी को चंदे में दस हजार रुपये मिलते हैं । निराला इन समाज-सुधारकों, धर्म के ठेकेदारों और ढोंगियों की करतूतों से अच्छी तरह वाकिफ हैं । यहाँ वे अपने को भी नहीं बख्शते । वे अपनी फकीरमस्ती और परियों के ख्वाब देखने पर हँसते हैं। कहानी का अन्त पगली की मृत्यु में होता है । मरने के बाद पगली समाज के सामने वैसे ही विकट प्रश्न रखती है जैसे प्रेमचंद का 'कफन' । इस कहानी में कोई समाधान नहीं सुझाया गया है, बल्कि 'गोदान' की तरह ही यह कई प्रश्न पाठकों के सामने रखती है ।

चतुरी चमार :

यह एक लम्बी कहानी है । इसमें चतुरी के जीवन के साथ-साथ निराला के जीवन के कई प्रसंग जगह घेरते हैं । कहानी में सन् 1931-32 के बैसवाड़े के ग्रामीण जीवन के अनेक पहलू अपने प्रभावशाली रूप में सामने आये हैं ।

चतुरी उम्र में निराला के बाबा जैसा है, लेकिन गाँव के रिश्ते में वह निराला का भतीजा लगता है। वह स्वयं तो जूते बनाता है, लेकिन उसकी इच्छा है कि उसका बेटा अर्जुन कुछ पढ़ ले। निराला चतुरी के प्रस्ताव पर अर्जुन को पढ़ाने के लिए राजी होते हैं। चूँकि गुरुदक्षिणा में निराला उससे गोश्त या बाजार से अन्य चीजें मँगाते हैं, इसलिए बिरादरी वाले निराला के साथ खान-पान बन्द कर देते हैं। अर्जुन को पढ़ाते समय उनके सामने और भी अड़चनें आती हैं।

गरीब किसानों को पीड़ित करने के लिए चतुरी के गाँव का जमींदार एक साल के हरी-भूसे को तीन साल का बाकी बनाकर दावा कर देता है। इसकी तहकीकात करने थानेदार आता है। गाँव के लोगों के कहने पर निराला थानेदार से प्रभावशाली ढंग से बात करते हैं। थानेदार को कविताओं की खोज है इसलिए निराला से यह सुनकर कि वे विश्वसभा के सदस्य हैं (जिसके सदस्य अनेक नोबल पुरस्कार पाए हुए साहित्यकार हैं) थानेदार लौट जाता है। लेकिन जमींदार ने जिस ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के यहाँ मुकदमा दायर किया, वह स्वयं जमींदार है और उसका रिश्तेदार वह वकील है जो चतुरी के विरोध में गढ़ाकोला के जमींदार की ओर से लड़ रहा है। परिणामस्वरूप मजिस्ट्रेट किसानों के खिलाफ जमींदार को डिग्री दे देता है। किसानों के बैल वगैरह नीलाम हो जाते हैं। (चतुरी अपना मुकदमा ऊपर की अदालत में ले जाता है। वह सत्तू बाँधकर अकेले ही दस-कोस पैदल चलकर कचहरी में अपनी गवाही देता है।)

इस कहानी में निराला ने किसानों के शोषण और जमींदारी कुचक्रों के चित्रण के साथ ही भारतीय किसान की बदलती हुई मानसिकता की तरफ संकेत किया है। (चतुरी यद्यपि अपढ़ है फिर भी वह अपने शोषित रूप से अच्छी तरह

परिचित है इसलिए अब जमींदार के सिपाही को जूता बनाकर देना नागवार गुजरता है । यह छोटे किसानों की बदली हुई मानसिकता है ।)

(इस कहानी में निराला वर्ण-व्यवस्था पर भी चोट करते हैं ।धार्मिक-रूढ़ियों को तोड़ने के लिए चतुरी से वे चाचा-भतीजा का रिश्ता कायम करते हैं ।चतुरी के लड़के अर्जुन को पढ़ाते हैं और सबसे बड़ा क्रांतिकारी काम यह करते हैं कि जिसकी छाया से भी लोग दूर भागते हैं, उसके हाथों से गोश्त खाते हैं --' चतुरी चमार मानव-निर्मित जाति-भेद पर आधारित ऊँच-नीच की विडम्बना से पीड़ित निम्नजाति में आत्मसम्मान की नई चेतना के प्रादुर्भाव की कहानी है । चतुरी उस उभरते आत्म-सम्मान का प्रतिनिधि है । एक बार चेतना आने पर वह आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए वह मिट सकता है पर झुक नहीं सकता ।''[1])

(निराला ने चतुरी को न तो क्रांतिकारी के रूप में चित्रित किया है, न ही सदियों से टूटे हुए किसान के रूप में । चतुरी साधारण किसान है,लेकिन वह विवश होकर जमींदारों के पैर पकड़ने वाला व्यक्ति नहीं है । उसे अपने) अधिकारों का ज्ञान है ।

राजा साहब को ठेंगा दिखाया :

यह कहानी सच्ची घटना पर आधारित है । कहानी में जमींदारों की क्रूरता और अन्याय का चित्रण है । विश्वम्भर एक सीधा और सच्चा ब्राह्मण है । वह विशालाक्षी देवी के मंदिर का पुजारी है । उसे राज्य की ओर से तीन रुपया महीना वेतन मिलता है, लेकिन पिछले बीस महीनों से उसे वेतन नहीं मिला है ।

1- रामगोपाल सिंह चौहान --निराला (सं० इन्द्रनाथ मदान),पृ0 216,प्रथम संस्करण, 1975

उसने साल-भर में दो दर्जन दरख्वास्तें दीं, लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई । पाँच आदमी के परिवार के भरण-पोषण की विकट समस्या उसके सामने खड़ी है। इसलिए एक बार वह अधिक प्रभावशाली ढंग से अपनी बात राजा तक पहुँचाना चाहता है । नौका-विहार करते राजा के सामने नदी-तट पर जाकर वह इशारे से कहता है– आपको दरख्वास्त दी है, पेट मलकर कहा ''भूखा हूँ''; मुँह चपचपाकर और ठेंगा दिखाकर कहा कि खाने को कुछ भी नहीं है । लेकिन राजा और उनके सिपाहियों ने दिकम्बर के इशारे को गलत समझा और इस आरोप में कि उसने राजा साहब को ठेंगा दिखाया है उसे बुरी तरह पीटा, 'उसकी दोनों गदोरी उँगलियाँ कुचल दी जाती हैं' । बाद में उसे नौकरी से भी निकाल दिया जाता है ।

कहानी एक ओर सामन्ती-शोषण को और दूसरी ओर जीर्ण-शीर्ण वर्ण-व्यवस्था के कारण उत्पन्न परिस्थितियों को उजागर करती है । राजा साहब के पास दौलत तो बेशुमार है लेकिन वह ऐशो-आराम के लिए है, जनता की भलाई के लिए नहीं । दिकम्बर वर्ण-व्यवस्था का हिमायती है - यह कहानी में अप्रत्यक्ष रूप से कहा गया है । वह जाति का ब्राह्मण है इसलिए जीविकोपार्जन के साधन के रूप में मंदिर में पूजा जैसे काम को ही स्वीकारता है, जबकि उसे पूजा के बदले वेतन के नाम पर तीन रुपये मिलते हैं, जिससे वह बड़ी मुश्किल से अपने परिवार का भरण-पोषण करता है । दिकम्बर भूखा है, फिर भी वह अपने वर्ण के खिलाफ कोई अन्य जीविकोपार्जन का साधन नहीं अपनाता ।

सफलता :

यह कहानी परोक्ष रूप से निराला के जीवन-संघर्ष को दर्शाती है । नरेन्द्र साहित्यकार है, लेकिन प्रकाशकों के शोषण-चक्र में पिसने को मजबूर है ।

वह अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति करने में भी असमर्थ है । धीरे-धीरे समय बदलता है । वह और उसकी पत्नी आभा मिलकर नाटक कम्पनी खोलते हैं और प्रकाशक धनीराम से अपने अपमान का बदला लेते हैं । विदित है कि निराला को भी प्रकाशकों के कुचक्र में पिसना पड़ा था । कहानी में नरेन्द्र के संघर्ष का ही चित्रण किया गया है, लेकिन अन्त में निराला पर काल्पनिक कथावृत्ति के सपने रचने की प्रवृत्ति हावी हो जाती है ।

भक्त और भगवान :

इस कहानी में एक हनुमान भक्त निरंजन की भक्ति तथा देश की दुर्दशा पर चिंता का वर्णन है । निरंजन के पिता जब तक जीवित थे, वह सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त भगवत् भजन में समय बिताता था । एक बार अपनी पत्नी में वह हनुमान के दर्शन करता है, लेकिन अज्ञानता-वश उसे समझ नहीं पाता । बाद में माँ-बाप और पत्नी की मृत्यु के बाद उसे सांसारिकता का ज्ञान होता है । वह राजा के यहाँ नौकर हो जाता है ; लेकिन प्रजा पर किये जाने वाले अत्याचार उससे देखे नहीं जाते , इसलिए वह नौकरी छोड़ देता है । एक दिन वह स्वप्न में हनुमान की वीर मूर्ति के दर्शन करता है, जो धीरे-धीरे भारतवर्ष के मानचित्र का रूप धारण कर लेती है । दोनों की एकरूपता के चित्र उसके मानसपटल पर उभरते हैं । उसे अपनी स्वर्गीया पत्नी के भी दर्शन होते हैं । हनुमान उससे कहते हैं - "यह मेरी माता देवी अंजना है । पत्नी के रूप में हनुमान, हनुमान के रूप में भारतवर्ष, और देवी अंजना के रूप में पुनः अपनी पत्नी के दर्शन से निराला यह बतलाना चाहते हैं कि ये सब एक ही चीज के विभिन्न रूप हैं । पत्नी, हनुमान और देश के प्रति प्रेम में कोई विरोध नहीं है ।

सखी :

यह एक युवती के त्याग की कहानी है । लीला एक गरीब लड़की है। वह स्वयं कालेज में पढ़ती है और ट्यूशन करके अपने परिवार का भरण-पोषण करती है । एक दिन पढ़ाकर लौटते समय दो गुंडे उसका पीछा करते हैं । उसी समय एक आई०सी०एस० अफसर उसकी रक्षा करता है । लीला की सखी ज्योतिर्मयी की शादी उसी अफसर से तय होती है, लेकिन ज्योतिर्मयी स्वयं उससे शादी नहीं करके लीला की शादी उससे करा देती है । यह एक रोमांटिक कहानी है ।

कला की रूपरेखा :

यह एक संस्मरणात्मक कहानी है । प्रारंभ में वाचस्पति पाठक से कला पर निराला की बहस होती है । एक दिन निराला किसी एक मद्रासी को देखते हैं जो जाड़े में सिर्फ एक लँगोटी पहने हुए उनके पास आता है । वह उसे अपनी खद्दर की चादर उतारकर दे देते हैं । मद्रासी युवक देशभक्त है । बाद में जब लखनऊ कांग्रेस में वह हिस्सा लेने आता है, तब निराला की भेंट उससे होती है । उसमें निराला को कला का जीवित रूप दिखाई देता है । वापस जाने के लिए उसके पास किराये के पैसे नहीं हैं । पैदल जायेगा लेकिन पैर में चप्पल नहीं है । निराला से वह पैसे माँगता है । निराला बहुत शर्मिन्दा होते हैं क्योंकि निराला के पास कुल छः पैसे हैं । चप्पल घिस गई है । न अपनी चप्पल दे सकते हैं, न नई खरीद सकते हैं । इस कहानी में निराला ने अपनी निर्धनता का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है । इसके साथ ही वे भारतीय राजनीति पर व्यंग्य करते हैं, जो बड़े-बड़े नेता स्वयं तो आलीशान बंगले में रहते हैं, लेकिन सच्चे देशभक्तों के लिए वे पैसे नहीं दे पाते ।

सुकुल की बीवी :

यह कुछ दूर तक संस्मरण है बाद में कहानी का रूप ग्रहण कर लेता है। प्रारंभ में निराला अपने सहपाठी सुकुल के स्कूली जीवन की तस्वीर खींचते हैं, साथ ही अपनी शादी, परीक्षा में गणित के हल करने के बजाय पद्माकर के छंद लिखने की बात करते हैं। अपने बारे में वे और भी बहुत सारी मनगढ़न्त बातें करते हैं। इसमें सुकुल की पत्नी कुँवर के जन्म और उसकी शादी का भी वर्णन है। इसी क्रम में समाज द्वारा प्रताड़ित एक अबला (कुँवर की माँ) की करुण स्थिति का भी वर्णन है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर भी प्रकाश डाला गया है।

श्रीमती गजानंद शास्त्रिणी :

इस कहानी में निराला ने अनमेल विवाह के साथ ही एक ऐसी युवती का वर्णन किया है जो अवसर का लाभ उठाकर देश की नेता बन जाती है।

शास्त्रिणी जी गजानंद शास्त्री की चौथी पत्नी है। उनका नाम सुपर्णा है। किशोरावस्था में उनका प्रेम मोहन नाम के युवक से हो गया था, लेकिन उनके पिता रामशिलाजन जी को यह रिश्ता मंजूर नहीं था। सोलह वर्षीय सुपर्णा को अधेड़ विधुर श्रीमान् गजानंद शास्त्री की पत्नी बनना पड़ता है। बाद में स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान श्रीमती शास्त्रिणी पिकेटिंग वगैरह में भाग लेकर समाज में प्रतिष्ठित महिला बन जाती है। इस कहानी में इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि भारतीय राजनीति में जो बहुत सारे नेता हैं वे अवसर का फायदा उठाकर नेता बन गये हैं।

देवर का इन्द्रजाल :

यह कहानी आत्म-कथात्मक शैली में लिखी गयी है । एक देवर इन्द्र-जाल की किताब पढ़कर अपने भाई-भाभी और अपने पड़ोसियों पर अपना अद्भुत प्रभाव डालता है । वह अपने को तांत्रिक विद्याओं में सिद्ध प्रमाणित करने के लिए उल्टे जूते से एक छुछुंदर को मारता है । इस छोटी-सी घटना से वह समाज में तांत्रिक के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है । "कुछ ही दिन के अंदर चारों ओर से बुलावे आने लगे — तरह-तरह के रोग झाड़ देने के लिए ।"[1]

इस कहानी में भारतीय जनता के अंधविश्वासों पर व्यंग्य किया गया है ।

जानकी :

यह कहानी भी आत्म-कथात्मक शैली में लिखी गयी है । इसमें लेखक ने अपनी कल्पना एक कम्युनिस्ट व्यक्ति के रूप में की है । "इधर नौजवानों के साथ रहने के कारण, एक कदम और आगे बढ़ गया हूँ, यानी कम्युनिस्ट हूँ ।"[2] इसमें लेखक ने रूस की क्रांति के विषय में बतलाते हुए लिखा है- "यह लड़ाई जनता की लड़ाई है, हमें हर हालत में रूस का साथ देना है।"[3] इस कहानी में देश में कम्युनिस्ट पार्टी की कार्यप्रणाली का भी विवरण दिया गया है ।

1- निराला - देवर का इन्द्रजाल (निराला रचनावली, भाग-4), पृ0 434

2- वही, पृ0 435

3- निराला - जानकी (निराला रचनावली, भाग-4), पृ0 436

राजनीतिक भूमिका के बाद लेखक ने कलकत्ते में अपनी पूर्वपरिचित महिला मित्र की हम-शक्ल औरत से मुलाकात की चर्चा की है । उस औरत को देखकर लेखक को ऐसा लगता है जैसे उसकी परिचित महिला मित्र (जिसकी काफी पहले मृत्यु हो चुकी है) सामने आ खड़ी हुई हो । लेकिन उसकी मुख-मुद्रा से लेखक दोनों महिलाओं में अंतर कर लेता है ।

यह कहानी भारत में साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को केंद्र में रखकर लिखी गयी है ।

<u>दो दाने :</u>

यह द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न देश की आर्थिक परिस्थितियों का दस्तावेज है । विदित है कि दोनों विश्वयुद्धों के बाद भारत की आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो गयी । इसके बाद रही-सही कसर महामारी, अकाल, तूफान और बाढ़ ने पूरी कर दी । लेकिन इन कठिन परिस्थितियों में भी ब्रिटिश सरकार ने जनता की कोई मदद न की । कमला नाम की विधवा गाँव में जीविकोपार्जन का और कोई साधन न पाकर अपने परिवार के साथ कलकत्ता आ जाती है । लेकिन यहाँ भी उसे दाने-दाने को मुँहताज होना पड़ता है । अन्ततः वह अपनी बेटी चम्पा का सौदा करती है । लेकिन ऐसा करते समय चम्पा के हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे । "पुरानी मर्यादा का बाँध टूट रहा था । दुख के आँसू उमड़कर सारा घर डुबो देना चाहते थे ।"[1] गरीब स्त्रियों

1- निराला - दो दाने (निराला रचनावली, भाग-4), पृ0 440-41

की इस दारुण अवस्था से किस प्रकार विलासी पुरुष अपना स्वार्थ साध रहे थे – कहानी में इसका भी चित्रण हुआ है ।

विद्या :

इसमें निराला ने भाषा-समस्या को उठाया है । कहानी के दो पात्र श्याम और विद्या के बीच संस्कृत और अंगरेजी भाषा की श्रेष्ठता के प्रश्न पर काफी बहस होती है । श्याम भारतीय संस्कृति का पक्षधर है, उसके मन में अपने देश, अपनी भाषा के प्रति सम्मान की भावना है इसलिए वह संस्कृत को श्रेष्ठ बतलाता है, जबकि उसकी प्रेमिका पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित रहने के कारण अंग्रेजी को श्रेष्ठ समझती है । सांस्कृतिक अवधारणाओं में भिन्नता के कारण अंत में दोनों एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं ।

इसमें श्याम निराला के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है । कहानी में हिंदी बनाम अंग्रेजी की समस्या को गम्भीरतापूर्वक और सही ढंग से पेश किया गया है । वस्तुतः यह कहानी निराला ने तब लिखी थी जब भारत में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को अपनाते हुए कुछ लोग झिझक रहे थे ।

—

तृतीय अध्याय

निराला के कथा-साहित्य में सामाजिक चेतना के विविध पक्ष

(क) आर्थिक पक्ष

(ख) राजनीतिक आयाम

(ग) सामाजिक समस्याएँ

(घ) सांस्कृतिक पक्ष

तृतीय अध्याय

विदित है कि बीसवी सदी के दूसरे दशक का काल राष्ट्रीय आन्दोलन के उभार का काल है और यही निराला का अभ्युदय काल भी है । स्वाधीनता आन्दोलन की यह माँग थी कि लेखक सामाजिक जीवन से मुँह न मोड़े बल्कि उससे तादात्म्य स्थापित कर उसे गहराई से देखे और अपनी रचनाओं में उसका चित्रण करे । निराला ने वक्त की इस माँग को स्वीकार किया । वस्तुतः निराला अपने युग के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों के प्रति बहुत सजग थे । यही कारण है कि जीवन का कोई पक्ष उनके साहित्य से अछूता नहीं रहा है बल्कि निराला ने बहुत प्रभावशाली ढंग से उनका चित्रण किया है ।

(1) आर्थिक पक्ष :

हम जानते हैं कि किसी भी समाज के जितने राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, और शैक्षिकपक्ष होते हैं, इन सबका नियमन बहुत हद तक उसकी अर्थ-व्यवस्था एवं उत्पादन प्रणाली के द्वारा होता है । किस तरह की अर्थ-नीति एवं उत्पादन प्रणाली के तहत् निराला के समय के समाज में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आयाम बन बिगड़ रहे थे, उसे समझने के लिए उसके पहले यह देखना आवश्यक है कि उस समय कौन-सी अर्थ-व्यवस्था कारक शक्ति के रूप में समाज के जीवन-धारा को प्रभावित एवं नियमित कर रही थी और उन्हें देखने-समझने का निराला का नजरिया कैसा था ।

हम जानते हैं कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ भारतीय किसान है । लेकिन स्वाधीनता आन्दोलन और उसके पहले भी सबसे खराब स्थिति भारतीय

किसानों की ही थी । साम्राज्यवादी शोषण का सबसे ज्यादा असर किसानों पर ही होता था । साम्राज्यवाद के पिट्ठुओं -देशी राजाओं, सामंतों तथा नवाबों से भारतीय किसान का हित टकराता था । इसलिए निराला का विचार था कि किसानों को आर्थिक शोषण से मुक्त करने के लिए साम्राज्यवाद को ही नहीं, उसके साथ सामंती व्यवस्था को भी उखाड़ फेंकना जरूरी है । यों तो सामंत अंग्रेजों के आने के पहले भी किसानों पर अत्याचार करते थे लेकिन तब उन्हें प्रजा के विद्रोह का भय बना रहता था । किन्तु अंग्रेजों के आने के बाद उनका यह भय भी जाता रहा । अब वे निःशंक होकर प्रजा को लूटने लगे । नतीजा यह हुआ कि पहले जो किसान सिर्फ सामंतों के शोषण के शिकार थे अब देशी सामंत और साम्राज्यवाद - दो पाटों के बीच पिसने लगे । जमींदारों और किसानों की स्थिति को लक्ष्य करके निराला ने लिखा कि अब वे लंदन और पेरिस की सैर करते हैं, प्रजा को जी भर कर सताते हैं "केवल एक दृष्टि रखते हैं कि सरकार प्रसन्न रहे । दूसरों की महिलाएं छीन ली गयीं, अत्याचार पर अत्याचार हुए, लगान पर लगान बढ़ा, प्रजा ने जरा-सी आवाज क्षमा के लिए उठायी तो गांव का गांव फूंक दिया गया ।" (सुधा, नवम्बर-32, सम्पादकीय टिप्पणी -2) । 'चोटी की पकड़' में उन्होंने जमींदारों और अंग्रेजों की सांठ-गांठ से किये जाने वाले किसानों के शोषण का चित्रण करते हुए लिखा-"राज्य की क्रिया का ढंग सब जगह, सब स्थानों में एक सा है । सब जगह एक ही प्रकार के नारकीय नाटक, षडयंत्र, अत्याचार किये जाते हैं । सब जगह रैयत की नाक में दम रहता है । चारों का प्रबंध ही सत्यानाश का कारण बनता है ।

अत्याचार से बचने की पुकार ही अत्याचार को न्योता भेजती है । जमींदार हो, ताल्लुकेदार हो, राजा हो या महाराज कृपा कभी अकारण नहीं करता । जिस कारण से करता है वह उसकी जड़ मजबूत करने के लिए । मुनाफे की निगाह से, दूने से बढ़ी हुई होनी चाहिए । .... सारे राज्य में उसके खास आदमियों का जाल फैला रहता है । वह और उसके कर्मचारी प्रायः दुश्चरित्र होते हैं, लोभी, निकम्मे, दगाबाज । फैले हुए आदमी, प्रजाजनों की सुंदरी बहू बेटियाँ, विरोधी कार्यवाइयों, संघठनों और पुलिस की मदद से जमींदार के आदमियों पर किए गये अत्याचारों की खबर देने वाले होते हैं । निर्दोष युवतियों की इज्जत जाती है, रिश्वत में रुपये लिए जाते हैं, काम में आराम चलता है, बचन देकर रैयत से पीठ फेर ली जाती है, बहाना बना दिया जाता है । पुलिस भी साथ ली जाती है ।"[1]

उल्लेखनीय है कि 1930 के आसपास भारत में जो किसान आन्दोलन हुआ उसका प्रमुख केन्द्र उत्तर भारत का अवध प्रदेश था । उसके बहुत पहले 1857 में जो लड़ाई हुई उसका केन्द्र भी अवध था । अवध में जो राजा अंग्रेजों के खिलाफ लड़े उनकी रियासतें छीन ली गयीं, जो वफादार बने रहे उसकी रियासतें सुरक्षित रहीं । यही नहीं जिनके पास कोई रियासत नहीं थी, लेकिन जिन्होंने अंग्रेजों की मदद की थी अंग्रेजों ने उन्हें ताल्लुकेदार बना दिया । ये ताल्लुकेदार भी अंग्रेजी राज की मदद से किसानों का भरपूर शोषण करते थे । 1857 से 1930 तक और उसके बाद भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ देशी

1- निराला – चोटी की पकड़ (निराला रचनावली, भाग-4), पृ० 150
प्रथम संस्करण 1983

राजाओं के सांठ-गांठ का चित्रण निराला ने 'अलका' उपन्यास में भी किया है- ताल्लुकेदार मुरलीधर के पितामह - जो कि एक अंग्रेज अफसर के यहाँ रसोइये का काम करते थे - ने रियासत अंग्रेजों की मदद करने के एवज में पायी थी, और इसके बाद उन्होंने किसानों का दमन और शोषण शुरू कर दिया था। अपने पितामह और पिता के नक्शे कदम पर चलते हुए मुरलीधर ने भी किसानों के शोषण चक्र को जारी रखा। उनके दमन चक्र में पिसते किसानों की दारुण दशा का वर्णन करते हुए निराला ने लिखा -''जमींदार, पुलिस, कचहरी, समाज सभी जगह वह नीच, अधम मनुष्य पदवी से रहित, ठोकरें खाने वाला है। कोई देख न ले और रोने का मतलब और न सोचें इसलिए खुलकर नहीं रोता। एकांत में ईश्वर को पुकार, शून्य देख, दुख के आंसू पीकर रह जाता है। तमाम उम्र उसने ऐसे ही पार की। छोटी-सी सीमा के बाहर उसे कोई नहीं पहचानता। सदा उसके सिर पर समाज, राजनीति, धर्म और मनुष्य-रूप राक्षसों से मिले हुए दुखों का पहाड़ रखा हुआ है।''[1]

किसानों की इस करुण स्थिति का चित्रण किसान जीवन के सबसे बड़े भारतीय चितेरा प्रेमचंद ने किया था। वस्तुतः किसान-जीवन को आधार बनाकर उन्होंने भारतीय साहित्य में नये यथार्थवाद का विकास किया। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में किसान-जमींदार के ऐसे संघर्ष के चित्र खींचे, प्रसाद ने, 'तितली' और 'कंकाल' तथा निराला ने, 'अलका' और 'चोटी की पकड़' उपन्यासों में वैसे ही चित्र प्रस्तुत किए।

साम्राज्यवाद मूलतः आर्थिक शोषण की व्यवस्था है। सन् 29 की

1- निराला - अलका ([illegible] 4), पृ0 35

मंदी से और भी स्पष्ट हो गया कि साम्राज्यवाद के शोषण-चक्र में सबसे ज्यादा किसान ही पीसे जाते हैं । एक तो उपज भरपूर नहीं होती, इसपर जो भी उपज होती है उसे किसानों को सस्ते दामों पर बेच देना पड़ता है । उपज कम हो या अधिक किसानों को लगान चुकाना ही पड़ता है, लगान भी उपज के अनुपात में नहीं बल्कि मुद्रा के रूप में वसूल किया जाता है । इसलिए सस्ते दामों पर गल्ला बेचे बिना किसान लगान अदा नहीं कर सकते थे । लगान नहीं दे पाने के कारण जमींदार उन्हें न केवल जमीन से बेदखल कर देते थे बल्कि इससे भी बड़ी यातना देते थे । 'श्यामा' कहानी में सुधुआ अपनी व्यथा-कथा कहता है -''आठ रुपये बीघे के हिसाब से जमींदार दयाराम महाराज ने तीन बीघे खेत दिये थे । मैंने कई साल खेतों को खूब बनाया, खाद छोड़ी, जब खेत कुछ देने लगे, तब पारसाल उन्होंने बेदखल कर दिया, पहले इजाफा लगान बीघा पीछे पाँच रुपये माँगते थे । अपने पास इतना दाम न था, खेत छोड़ दिए । पर किसान जाए कहाँ, क्या खाए । फिर उन्हीं जिमींदार दयाराम महाराज के पैरों नाक रगड़नी पड़ी । उन्होंने पाँच रुपये बीघे पर ढाई बीघे का एक खेत दिया । खेत बिल्कुल ऊसर है । मैं जानता था । पर लेना पड़ा । खेती न करें तो महाजन उधार नहीं देता, भूखों मरा नहीं जाता । खेती में साढ़े बारह का पूरापूर डाँड़ पड़ गया ।''[1]

साढ़े सात रुपये लगान के नहीं चुका पाने के कारण सुधुआ को आखिरकार प्राण से हाथ धोना पड़ा । लगान न चुकाने के कारण जो खलल

1- निराला - श्यामा -'लिली' कहानी संग्रह, पृ0 52

बुधुआ की हुई लगभग वैसी ही हालत 'अलका' उपन्यास के बुधुआ की है । लगान के दो रुपये नहीं चुका पाने के कारण जमींदार कृपानाथ की अदालत में बुधुआ को मुलजिम बनकर आना पड़ा । जमींदार के सामने आने पर बुधुआ की दशा का चित्रण करते हुए निराला ने लिखा — ''बुधुआ इतना घबराया कि उसकी जबान बंद हो गयी । वहाँ सिर्फ काँपने लगा, जो रुपये न रहने का ही रोएँ-रोएँ से दिया हुआ उत्तर था । बुधुआ की हालत प्रायः अच्छी नहीं रहती । कारण जमींदार साहब स्वयं हैं । दूसरे खेतों से कम निर्ख पर जो खेत उसे देने की उन्होंने कृपा की, वे उपज में ऊसर के बराबर होड़ करने वाले, प्रायः महाजन को ड्योढ़ी का नाज भी नहीं दे सकते । इसलिए बुधुआ का पेशा काश्तकारी केवल दिखाने के लिए है, करता है वह मजदूरी । इसी से पेट काटकर किसी तरह उसने यहाँ तक लगान चुकाया ।''[1] भारतीय किसान की यह असली दशा है । कहने को तो वह किसान है, लेकिन उसकी स्थिति मजदूरों से भी बदतर है । जमींदारी की साजिश के शिकार चतुरी चमार के भाई बंधु भी होते हैं । चतुरी के गाँव में भी ''कुछ किसानों पर एक साल के हरी-भूसे की तीन साल की बनाकर, जमींदार ने 'आनरेरी' दावे दायर किये थे ।''[2] वस्तुतः पूरे भारत के छोटे किसानों की लगभग यही दशा थी । छोटे किसानों की इसी दारुण दशा को देखकर निराला देश की युवाशक्ति को गाँव में जाकर किसानों को संगठित करने को प्रेरित करते हैं ।

किसानों को संगठित करने का काम 'कर्मभूमि' में अमरकांत करता है । निराला के उपन्यासों 'अप्सरा' और 'अलका' में यही काम क्रमशः चंदन

1- निराला — अलका, पृ0 44 - द्वितीय आवृत्ति 1982

2- निराला - चतुरी चमार, पृ0 15, संस्करण 1976

और अजित करते हैं। 'श्यामा' कहानी में बंकिम छोटे किसानों की मदद करता है और 'चतुरी चमार' में निराला स्वयं किसानों की लड़ाई लड़ते हैं।

ज्ञातव्य है कि 1930-31 तक अखिल भारतीय किसानों की चेतना में मौलिक परिवर्तन हुआ। उनमें आत्मसम्मान की भावना पैदा हुई उन्हें अपनी शक्ति और अपने महत्व का ज्ञान होने लगा; इस स्थिति को लक्ष्य करके निराला ने 'अलका' में लिखा --''किसानों का सबसे बड़ा कुसूर यह है कि वे पहले की तरह नहीं डरते, लगान के अलावा वाजिब-उल-अर्ज से अधिक जो रकम और परिश्रम किसानों से लिया जाता था -- हली, भूसा, रस, पुआल, सिंचाई का काम आदि, अब नहीं देते और ऐसे देखते हैं जैसे परम मित्र हों।''[1] 'अलका' के किसानों की तरह चतुरी को भी अपने शोषण का पता चल गया है, उसे अब मुफ्त में जमींदारों को जूता देना अखरता है, इसलिए वह निराला से पूछता है ''बाबा जमींदार के सिपाही को एक जोड़ा हर साल देना पड़ता है। एक जोड़ा भगतवा देता है, एक जोड़ा पंचम। जब मेरा ही जोड़ा मजे में दो साल चलता है, तब ज्यादा लेकर कोई चमड़े की बरबादी क्यों करे?''[2] यही नहीं चतुरी जमींदार के खिलाफ मुकदमा लड़ता है और अंत में पता लगाकर लौटता है कि जूता देने की बात अब्दुल-अर्ज (वाजिब-उल-अर्ज) में दर्ज नहीं है। मुकदमा लड़ने के लिए चतुरी सत्तू बाँधकर दस कोस पैदल उन्नाव जाता है। लेकिन किसानों में इस प्रकार की चेतना आने के कारण उन्हें जमींदारों और अंग्रेज हाकिमों का कोप भाजन भी बनना पड़ता है।

1- निराला - अलका, पृ० 87

2- निराला - चतुरी चमार, पृ० 9

लेकिन छोटे किसानों की इस चेतना को दिखलाने के पीछे निराला का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि शोषण के खिलाफ लड़ाई में किसानों की विजय हुई और उनकी यंत्रणाएँ समाप्त हो गयी । वस्तुतः ये घटनाएँ किसानों की परिवर्तित चेतना की सूचित मात्र हैं । अभी भी भारतीय किसान ''एक ऐसे जाल में फँसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका पूरा जोर उमड़ रहा है, पर एक ऐसी कमजोरी है जिसमें बार-बार उलझकर रह जाता है ।''[1]

निराला ने देश की आर्थिक व्यवस्था के सुधारक एवं नियामक के रूप में किसानों की भूमिका का महत्व माना । उनका विचार है कि देश का कल्याण औद्योगिक प्रगति से नहीं बल्कि किसानों के उत्थान से होगा ।' किसान और उनका साहित्य ' शीर्षक टिप्पणी में उन्होंने लिखा –''इस प्रकार अब वैश्य-धर्म अपने तमाम विज्ञान के साथ होकर भी संसार की शांति को सचारा नहीं दे रहा । इसके भी दिन पूरे हो गए । नया उदाहरण रूस है जिसने किसानों का राज्य स्थापित किया । आज संसार के बड़े-बड़े प्रायः सभी मनुष्य किसानों के युग का स्वागत कर रहे हैं । ·····(भारत में महात्मा गांधी की साधना वैश्य शक्ति के खिलाफ पीड़ित , शूद्र, अछूत, मजदूर और किसान शक्ति को ऊपर उठाने के लिए हुई । देश के पेड़ को हरा-भरा करने के लिए उसकी जड़-किसानों में जीवन डालना चाहिए)''[2] वे आगे लिखते हैं –''देश

1- निराला - चतुरी चमार - कहानी संग्रह, पृ0 9

2- निराला रचनावली -भाग-6, पृ0 442

की सच्ची शक्ति इसी जगह है । जब तक किसानों और मजदूरों का उत्थान न होगा, तब तक सुख और शांति का केवल स्वप्न देखना है ।"[1]

निराला ने अपने कथा-साहित्य में दोनों महायुद्धों से उत्पन्न देश की आर्थिक-स्थिति का भी चित्रण किया है । विदित है कि दोनों महायुद्धों ने भारत की अर्थव्यवस्था को झकझोर कर रख दिया । रही-सही कसर मधमारी, अकाल, तूफान और बाढ़ ने पूरी कर दी । लेकिन ऐसी बात नहीं है कि ब्रिटिश सरकार इन आपदाओं से भारतीय जनता की रक्षा करने में सक्षम थी । ब्रिटिश सरकार अगर चाहती तो जितने बड़े पैमाने पर इस समय जन-धन की हानि हुई, उसे रोक सकती थी । लेकिन साम्राज्यवाद कभी भी अपने उपनिवेश को सुशासन देखना नहीं चाहता । अंग्रेजों ने भी अकाल और बाढ़ के समय सिर्फ दया-दान और खाद्यान्न के प्रबंध में कोई आनाकानी नहीं दिखाई बल्कि खाद्यान्न के दाम भी अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिए । अंग्रेजों के साथ ही भारतीय पूंजीपति वर्ग ने भी इस स्थिति से खूब फायदा उठाया । उन्होंने अनाज को गोदामों में छिपाकर अनाज की कृत्रिम कमी पैदा कर दी । इसी स्थिति को लक्ष्य करते हुए निराला ने लिखा --"चावल और धान के व्यापारी मारवाड़ियों ने अपनी कोठियां भर ली हैं । अन्न इतना महंगा हो गया कि मोल नहीं लिया जाता । गांव के बाजार के बाजार खाली हो गए । न पैसा न अन्न । पहले लोग उपाय करने लगे । दिन में एक वक्त, फिर दो दिन में एक वक्त, बाद में यह भी मोहाल हो गया । पेड़ों की कोपलें उबालकर खाने लगे । कुछ दिन में

1- निराला रचनावली -भाग-6, पृ0 443

ही हरा-भरा बंगाल ठूंठा हो गया । आदमी और ढोरों के पेट में पेड़ों के पत्ते चले गये । भूख की ज्वाला बढ़ती गयी । देहात में भीख न मिलने की वजह से लोग शहर के रास्ते दौड़े । कोई आधी दूर चलकर मरा, कोई पहुँचकर, मगर पेट में दाना न गया ।''[1] इस अकाल में स्त्रियों की कैसी दयनीय स्थिति हो गयी थी उसका चित्रण करते हुए निराला ने आगे लिखा-''इसी समय कमला को सूझा, अपने परिवार को लेकर कलकत्ता चली जाए । जिस तरह दूसरी लावारिस युवतियों ने यौवन बेचकर अपने भाइयों की परवरिश की है, वह भी करेगी ; नहीं तो अन्न के अभाव से सबके साथ-साथ खुद अपने को भी काल का ग्रास होते देखेगी ।''[2] निराला के कथा-साहित्य में व्यक्त यह आर्थिक विषमता उनके अनुभव की प्रतिच्छाया है । विदित है कि निराला का लगभग सारा जीवन आर्थिक विपन्नता में बीता था । अर्थाभाव के कारण वे अपनी पुत्री सरोज की बीमारी का इलाज नहीं करा सके थे । निराला ने व्यथित होकर लिखा - ''धन्ये मैं पिता निरर्थक था

कुछ भी तेरे हित न कर सका''[3]

निराला अर्थ प्राप्ति के सभी उपाय जानते थे, लेकिन वे उन्हें स्वीकार्य नहीं थे । झूठ, छल, कपट और अपने ही भाइयों का गला रेतकर समृद्ध बनने की अपेक्षा भूखा रहना उन्होंने मंजूर किया । उन्होंने 'सरोज स्मृति' में ही लिखा-

---

1- निराला - दो दाने (निराला रचनावली- भाग-4),पृ0 437

2- वही, पृ0 438

3- निराला - सरोज स्मृति (राग-विराग),पृ0 20

"जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर"[1]

निराला को स्वयं कई बार भूखा रहना पड़ा था इसलिए वे दूसरों की भूख की पीड़ा को समझने में समर्थ थे। यही कारण है कि उनके कथा-साहित्य में भारतीय जनता के दुःख दैन्य का यथार्थ चित्रण हुआ है और वे पाठक के दिलो-दिमाग पर गहरा असर डालते हैं।

(2) राजनीतिक आयाम :

भारत की आर्थिक स्थिति - विशेष कर किसानों की स्थिति में सुधार के लिए राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन को निराला अनिवार्य समझते थे। वस्तुतः वे एक महान रचनाकार ही नहीं एक कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। यहाँ राज-नीतिज्ञ से मतलब राज्य-सत्ता संचालन करने की कला में दक्षता से नहीं है। राजनीतिज्ञ का अनिवार्य गुण होता है, अपने समय की राजनीतिक घटनाओं के स्वरूप की पहचान करना, उसमें आवश्यकतानुसार भाग लेकर उसे अपने विचारों के अनुरूप मोड़ देना। यह कार्य वह लेखन के द्वारा भी करता है और उसमें अपना शारीरिक योगदान भी देता है। राल्फ़फाक्स, काडवेल जैसे लेखकों ने स्पेन के गृहयुद्ध में प्रजातांत्रिक शक्तियों का न केवल लेखन के द्वारा समर्थन किया बल्कि उसके लिए हो रहे संग्राम में हिस्सा भी लिया और अपने प्राणों की बाजी लगा दी। निराला भी इसी अर्थ में राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने अपने समय

1- निराला - सरोज स्मृति (राग-विराग), पृ0 80 अष्टम संस्करण 1983

के राजनीतिक घटना चक्रों के प्रति अपनी लेखकीय प्रतिक्रिया व्यक्त कर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं मान ली, उन्होंने उसमें भागीदारी भी की । कांग्रेस के नेतृत्व में चल रहे स्वाधीनता आन्दोलन का निराला ने समर्थन किया तो उसकी समझौतावादी एवं पूंजीवादपरस्त रवैये का भंडाफोड़ भी किया । उस दौर में देश में विकसित होने वाली समाजवादी ताकतों, संगठनों एवं प्रगतिशील जीवन-मूल्यों को अपना समर्थन देने में निराला कभी पीछे नहीं रहे । इस संदर्भ में डा० रामविलास शर्मा का कहना है --''दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसके बाद बंगाल में स्वाधीनता आन्दोलन ने जोर पकड़ा । अक्सर उसने उग्र रूप अपनाये । समाजवादी विचारधारा का प्रभाव भी बढ़ रहा था । निराला दरिद्रनारायण की सेवा के लिए गये, बंगाल के गांवों में किसानों की हालत देखी, राजनीतिक आन्दोलन के संपर्क में आये । सन्यास काफी नहीं है, सक्रिय राजनीतिक संघर्ष के बिना देश का उद्धार असंभव है ।''[1]

(निराला की रचनात्मक ऊर्जा का विकास जिन वर्षों में हुआ वह मुख्यतः भारतीय जनता और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बीच घोर संघर्ष का काल है । निराला शुरू-शुरू में आजादी के विचार से भावनात्मक स्तर पर बहुत उद्वेलित दिखलाई पड़ते हैं । इस उद्वेलन में कभी मातृ-वन्दना करते हैं तो कभी राम, तुलसी और शिवाजी के माध्यम से गुलामी की जंजीर को तोड़ने का स्वप्न देखते हैं । ''लेकिन (धीरे-धीरे निराला की रचनाओं में गुलामी से मुक्ति की यह ललकार तथा आत्म-बलिदान की यह उत्कट भावना मंद पड़ती हुई दिखाई देती है।

1-डा० रामविलास शर्मा --निराला की साहित्य साधना, भाग-1, पृ० 426
तृतीय संस्करण 1979

शायद निराला इन दिनों गहरे विचार - आलोड़न में पड़े हैं और जब वे इस प्रक्रिया से बाहर निकलते हैं तो उनका स्वर बदला हुआ दिखाई देता है । आजादी के लिए इस तरह की ललकार उन्हें व्यर्थ मालूम देती है । उन्हें पूरी तरह विश्वास हो गया है कि आजादी के विचार को जनता की मुक्ति से अलग करके नहीं देखा जा सकता । और अगर कोई ऐसी आजादी मिल भी गयी जिसका जन-मुक्ति से कोई सरोकार न हो तो उस आजादी का कोई मतलब नहीं ।...[1]

उन्हें यह जन-मुक्ति किसी समझौते में नहीं दिखाई देती है । उन्हें लगता है कि जब बुधुआ, सुधुआ और चतुरी जैसे लोग अपने अधिकारों के प्रति सजग होंगे तभी सामंतवादी और साम्राज्यवादी शक्तियाँ मैदान छोड़कर भगेंगी । निराला के राजनीतिक चिंतन की एक विशेषता यह है कि वे साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में भारतीय जनता के वर्ग-संघर्ष को नहीं भूलते, क्योंकि उन्हें यह अच्छी तरह मालूम है कि ये राजे-रजवाड़े जनता को ठगने और उनका शोषण करने के लिए घात लगाये बैठे हैं । ''निराला इस बात को बहुत गहराई से समझते हैं, इसलिए उनकी रचनाओं में कहीं भी इस वर्ग-समझौते अथवा वर्ग-समन्वय की चेष्टा नहीं है । वे गांधी जी की तरह इस बात में कतई यकीन नहीं करते कि साम्राज्यवादी शक्तियों से लड़ने के लिए सारी भारतीय जनता को अपना वर्ग-विरोध भूलकर एक जुट हो जाना चाहिए । .... उन्हें कहीं-कहीं इस बात का डर है कि नेहरू और गांधी के इन प्रयत्नों से जो स्वराज्य आयेगा, वह उसी राजे का परिवर्धित- संशोधित समाज होगा और निराला

1- दूधनाथ सिंह - निराला, आत्महंता आस्था, पृ० 187-189 प्रथम संस्करण 1972

अपनी रचनाओं द्वारा उस समाज के भरपूर विरोध में लगे हुए दिखाई देते हैं।''[1] निराला की आस्था का आधार, उनके समस्त कार्यों का लक्ष्य भारत है। इसलिए वे स्वाधीनता आंदोलन को सिर्फ राजनीति से जोड़कर नहीं देखते। देश की स्वाधीनता को वे एक भिन्न विषय के रूप में देखते हैं।

'अलका' उपन्यास में निराला ने राजनीतिक आन्दोलन को एक व्यापक आन्दोलन मानते हुए लिखा –''बात यह है कि देश की स्वतंत्रता एक भिन्न विषय है। वह केवल राजनीतिक प्रगति नहीं है। ..... देश की व्यापक स्वतंत्रता को सब तरफ की पुष्टि चाहिए। जबतक सब अंगों से समान पूर्णता नहीं होती, तब तक स्वतंत्र शरीर संगठित नहीं हो सकता। हमारे यहाँ ऐसा नहीं हो रहा है। हमारे यहाँ तो कानून के बल पर राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल की जा रही है।''[2] वस्तुतः निराला के लिए स्वाधीनता का अर्थ सिर्फ यह नहीं है कि भारत साम्राज्यवाद के शिकंजे से मुक्त हो जाए। प्रेमचंद की तरह वे भी मानते थे कि ''जॉन की जगह गोविंद'' के सत्ता सम्भाल लेने से देश की वर्तमान स्थिति में कोई परिवर्तन होने वाला नहीं है। अगर देश को वास्तविक अर्थों में मुक्ति दिलानी है तो इसके लिए पूरे सामाजिक ढांचे को बदलना होगा, तभी मानव-मात्र का कल्याण संभव है।

ध्यातव्य है कि सन् 20 से 47 तक निराला-साहित्य को प्रेरित करने में उनकी मुक्ति की आकांक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिन्दी में उनकी

1- दूधनाथ सिंह - निराला आत्महंता आस्था, पृ0 189-191

2- निराला - अलका -[illegible], पृ0 31

पहली प्रकाशित कविता "जन्मभूमि है", जिसमें उन्होंने लिखा "जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी"। द्वितीय महायुद्ध के बाद जब भारत में स्वाधीनता आंदोलन ने और पकड़ा तो निराला ने "चोटी की पकड़" नामक उपन्यास में स्वाधीनता आन्दोलन के विभिन्न पक्षों को उभारना चाहा था। उपन्यास की भूमिका में उन्होंने लिखा --""स्वदेशी आन्दोलन की कथा है।""[1] इस उपन्यास में उन्होंने अंग्रेजों की बंगभंग की योजना से उत्पन्न जनमानस की प्रतिक्रिया का चित्रण किया। उन्होंने लिखा --""इसी समय लार्ड-कर्जन ने बंगभंग किया। राजनीति के समर्थ आलोचकों ने निश्चय किया कि इसका परिणाम बंगाल के लिए अनर्थकर है।... इसलिए यह विभाजन की आग छोटे-बड़े सभी के दिलों में एक साथ जल उठी। कवियों ने सद्योग-पूर्वक देशप्रेम के गीत रचने शुरू किये। संवाद पत्र प्रकाश्य और गुप्त रूप से उत्तेजना फैलाने लगे। जगह-जगह गुप्त बैठकें होने लगीं। कामयाबी के लिए विधेय-अविधेय तरीके अख्तियार किये जाने लगे। संघ-बद्ध होकर विद्यार्थी गीत गाते हुए लोगों को उत्साहित करने लगे। अंग्रेजों के किए अपमान के जवाब में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञाएं हुईं। लोगों ने खरीदना छोड़ा। साथ ही स्वदेशी के प्रचार के कार्य भी परिणत किए जाने लगे। गांव-गांव में इसके केन्द्र खोले जाने लगे। कार्यकर्त्ता उत्साह से नयी काया में जान फूंकने लगे।""[2] बंगभंग को लेकर पूरे देश में जो विरोध हुआ और देश को आजाद देखने के लिए जनता ने जिस उत्साह से काम किया उसका वर्णन करते हुए निराला ने लिखा --""इस समय गुप्त सभाओं का जैसा क्रम चला, वैसा

1- निराला - चोटी की पकड़(निराला रचनावली, भाग-4), पृ0 126

2- वही, पृ0 132

और उतना सिराजुद्दौल्ला के समय अंग्रेजों की मदद के लिए भी नहीं चला ।..[1]

विदित है कि स्वाधीनता आंदोलन में कुछ देशी सामंतों ने भी भाग लिया था लेकिन खुदीराम बोस और भगत सिंह सरीखे देश प्रेमियों की तरह निष्काम भाव से नहीं, बल्कि इसके पीछे उनकी स्वार्थपरता कार्य कर रही थी । निराला ने इन देशी पूंजीपतियों की मंशा को अच्छी तरह समझा था । 'चोटी की पकड़' में राजा राजेन्द्र प्रताप को वे ऐसे ही स्वार्थी राजा के रूप में प्रस्तुत करते हैं । उनकी मंशा को स्पष्ट करते हुए निराला ने इसी उपन्यास में लिखा —''अगर स्वार्थ को गहरा धक्का न लगा होता तो ये जमींदार स्वदेशी आन्दोलन में कदापि शरीक न हुए होते । इन्होंने साथ भी पीठ दिखाकर दिया था ।..[2]

देश की राजनीति पर विचार करते हुए निराला ने उस नुक्ते पर उंगली रखी जिसके कारण भारत बार-बार गुलाम हुआ । 'प्रभावती' उपन्यास में उन्होंने इस तथ्य को सामने रखा कि भारत की पराधीनता के कारण स्वयं वर्ण का शासक वर्ग रहा है । यमुना कहती है —''जहाँ भारत के राज पारस्परिक विरोध में पागल थे, वहीं कम्बोजियों को समझने के लिए मुहम्मद गोरी तत्पर हो रहा था । सारे देश में उसने डेरे डाल रखे थे । ..... पंजाब से लेकर सिंध तक उसका राज्य विस्तार हो गया था । पर भारत के किसी भी दूसरे प्रदेश के राजा को यह बुरा नहीं लगा, किसी ने इसके लिए

1- चोटी की पकड़ – निराला रचनावली, भाग-4, पृ० 133

2- वही, पृ० 132

मुहम्मद के विरोध की चर्चा नहीं की, सब अपनी ही सीमा की स्वाधीनता की हद मानते थे ।''[1] लगभग यही स्थिति अंग्रेजों के आक्रमण के समय भारतीय राजाओं और नवाबों की थी । इसके साथ ही उनकी भोग-लिप्सा और विलासिता ने भी विदेशी शक्तियों को भारत पर शासन करने के लिए आमंत्रित किया । इस बात के सबसे बड़े प्रमाण अवध के नवाब वाजिदअली शाह हैं ।

उल्लेखनीय है कि सन् 1946 का वर्ष भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । सारे संसार में नाजियों की हार के बाद साम्राज्यवाद विरोधी चेतना फैल चुकी थी । भारतीय जनता भी इससे अछूती नहीं थी, अब वह पूर्ण आजादी के लिए कृत संकल्प थी । लेकिन जब भारतीय नेतृत्व ने शांतिपूर्ण वैधानिक तरीके से सत्ता प्राप्त कर दिल्ली में अन्तर्कालीन सरकार बनायी, तब निराला ने कहा -''आज जनता की चिंताधारा और कांग्रेस की कार्य-प्रणाली में कोई तारतम्य नहीं रहा । भारतीय राजनीति में आज एक ही रास्ता साफ है, क्रांति पथ, संघर्ष का पथ और अंत में समाजवाद का पथ — इसके अलावा कोई दूसरा पथ नहीं ।''[2]

यों तो आजादी के पहले भी निराला कांग्रेस की कार्य-प्रणाली से सहमत नहीं थे । कांग्रेस का अपने छोटे-मोटे कार्यकर्ताओं के प्रति जो रवैया था, निराला उसके बड़े आलोचक थे । 'कला की रूप-रेखा' शीर्षक सत्य-कथा में उन्होंने एक मद्रासी स्वयंसेवक की कठिनाइयों का वर्णन किया । [illegible] में कांग्रेस की बैठक में एक स्वयंसेवक मद्रास से आया, लेकिन लौटने के लिए उसके पास एक नया

1- निराला - प्रभावती (निराला रचनावली, भाग-3), पृ० 265

2- गंगाप्रसाद पाण्डेय - महाप्राण निराला, पृ० 110

पैसा नहीं था । वह निराला के पास मदद माँगने गया, उसने कहा ''अब गरमी बहुत पड़ने लगी है । देश जाना चाहता हूँ । रेल का किराया कहाँ मिलेगा ? पैदल जाना चाहता हूँ । निराला के यह पूछने पर कि क्या कांग्रेस के लोग आपकी इतनी सी मदद नहीं कर दे सकते, उसने कहा, "नहीं कांग्रेस का यह नियम नहीं है । मैं मिला था । मुझे यह उत्तर मिला है । खैर, मैं भीख माँगता खाता पैदल चला जाऊँगा । पर गरमी बहुत पड़ती है, पैर जल जाते हैं ।''[1] निराला ने कांग्रेसी देशोद्धारकों के सामने सच्ची देश-सेवा और लगन का आदर्श रखने के लिए उस मद्रासी स्वयंसेवक को सामने ला खड़ा किया । 'कुल्लीभाट' के कुल्ली भी सही मानें में देशभक्त हैं । उन्हें अछूतों के लिए स्कूल खोलने के लिए कांग्रेस की ओर से पैसे नहीं मिलते, तब भी उनके उत्साह में कमी नहीं आती । वे चंदा माँगकर अछूत बालकों को शिक्षित करने का बीड़ा उठाते हैं । देश के अवसरवादी, सुविधापरस्त नेताओं को बेनकाब करते हुए निराला ने 'देवी' शीर्षक कहानी में लिखा, ''एक रोज मैंने देखा, नेता का जुलूस उसी रास्ते से जा रहा था । हजारों आदमी इकट्ठे थे । जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था । .... पगली भी उठकर खड़ी हो गयी थी । बड़े आश्चर्य से लोगों को देख रही थी । रास्ते पर इतनी बड़ी भीड़ उसने नहीं देखी । .... भीड़ में उसका बच्चा कुचल गया और रो उठा । ..... नेता दस हजार की थैली लेकर गरीबों के उपकार के लिए चले गए -- जल्दी-जल्दी कामों में खर्च होंगे ।''[2] नेताजी

1- निराला - सुकुल की बीवी - कहानी संग्रह, पृ0 70-71 चतुर्थ संस्करण

2- निराला - चतुरी चमार - कहानी संग्रह में संकलित, पृ0 43

के लिए भाषण देना, जुलूस का नेतृत्व करना परमावश्यक काम है, लेकिन पगली जैसी भारत की हजारों युवतियों के कल्याण की बात भूल से भी उनके मन में नहीं आती। नेताजी ही नहीं हिन्दू-मुसलमान, बड़े-बड़े पदाधिकारी, राजा, रईस उस रास्ते से गुजरे, सबने पगली को देखा लेकिन किसी के मन में पगली के लिए सहानुभूति पैदा नहीं हुई। देश के पूँजीपतियों पर और नेताओं पर व्यंग्य करते हुए निराला ने लिखा –

> खुला भेद विजयी कहाये हुए जो
>
> लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं,

आजादी के बाद तो उन्हें कांग्रेस और सरकार के नाम से चिढ़ हो गयी थी। गंगा प्रसाद पाण्डेय से उन्होंने बहुत व्यथित होकर कहा – "आज जागरण के गीत गाना राजद्रोह समझा जाता है।"[1]

निराला ने अपने कथा-साहित्य में शासकों के दांवपेंच और उनकी रक्षा करने वाले पुलिस-वर्ग के अत्याचारों का भी चित्रण किया है। एक बार बेगार न करने के कारण पुलिस ने कल्लन को कड़ी यातना दी थी। 'अलका' में उन्होंने लिखा –"एक दफा पुलिस की बेगार का बुलावा आया था, वह घर से नहीं निकला, औरत ने कहा, वह नहीं हैं, तब पुलिस के सिपाही घर में घुसकर मारते-मारते उसे बाहर ले आये थे, और बेगार करायी थी, बोझ लेकर उसे थाने तक जाना पड़ा था।"[2] पुलिस के अत्याचारी रूप का चित्रण उन्होंने 'न्याय' शीर्षक कहानी में भी किया है। एक युवक राजीव, हुरे की मार से घायल व्यक्ति के दुःख से द्रवित होकर उसे उठाकर थाने में लाता

1- डा० रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ० 36।

2- निराला - अलका, पृ० 54

है। लेकिन पुलिस हत्या का आरोप राजीव पर ही लगाती है। थानेदार की मंशा घूस लेकर उसे छोड़ने की थी। इसी तरह 'कुल्ली भाट' में भी बिना वजह पुलिस रामसिंह नामक पहलवान को गिरफ्तार कर लेती है और बाद में दो सौ रुपये घूस लेकर उसे रिहा करती है। आम जनता के शोषण में जमींदार (शासक वर्ग) और पुलिस की मिली भगत का चित्रण निराला ने 'कुल्ली भाट' में किया है। उन्होंने लिखा ""जमींदार ने थानेदार से कहा ""अगर बंद कर दीजियेगा तो रुपये से हाथ धोना होगा, नहीं तो दो सौ रुपये देने को कहता है। तौल दीजिए, घर से ले आकर दे जाए।""[1] समाज में अराजकता फैलाने, लूटमार, चोरी, डकैती सब पुलिस की मिलीभगत से ही होती है – इसका चित्रण भी निराला ने 'कुल्ली भाट' में किया है। प्रशासन के दोहरे चेहरे को बेनकाब करते हुए निराला ने लिखा –""जिस तरह चोरी का न होना एक सरकार का धर्म है, उसी तरह चोरी का होना भी उसका धर्म कहा जा सकता है, जबकि लोगों की माली हालत के सुधार का तरीका ही उल्टा है, जमींदारों के बड़प्पन की धाक चलती है, विलायत की नोबिलिटी का देश पर सिक्का है। इस तरह एक थाने में हर रात चोरियाँ होती रहती हैं, कुछ लिखी जाती हैं कुछ नहीं।""[2] यह तस्वीर आजादी के बाद की सत्तावर्ग और पुलिस के साठ-गांठ की भी है। निराला का यह कथन आज भी प्रासंगिक है कि "राजनीति सब समय की एक सी होती है। राजा या राज्य की ऐश्वर्य सत्ता का भोग करने वाले कभी वृहत् अंश साधारण की भलाई के लिए नहीं छोड़ सकते।""[3] इस तरह के अत्याचार और अन्याय

1- निराला - कुल्ली भाट (निराला रचनावली, भाग-4), पृ0 259

2- वही, पृ0 255-256

3- निराला ग्रंथावली (निराला रचनावली, भाग-4), पृ0 263 263

के शोषण के प्रति निराला की यह दृष्टि काम कर रही थी कि देश को अगर सच्चे अर्थों में स्वाधीन करना है तो यहाँ की जनता को हर तरह के शोषण से मुक्त किया जाना चाहिए – चाहे वह जमींदारी शोषण हो, पुलिस का शोषण हो, या अन्य किसी प्रकार का शोषण हो । दरअसल ''निश्छल और पवित्र मानवीयता ही उनका जीवन-दर्शन है, उनकी कविताओं की राजनीतिक चेतना मनुष्य है । दुख-दर्द और अपमानना में फँसा हुआ मनुष्य । अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध वे बेखटके हर जगह आवाज बुलंद करते हैं । उनकी तीखी राष्ट्रीय चेतना और जन-मुक्ति के पीछे यही मानवीयता नैतिकता का भाव है ।''[1]

वस्तुतः निराला की राजनैतिक चेतना और उनके राजनीति संबंधी विचार नेताओं की राजनीतिक चेतना से बहुत आगे, बहुत परिष्कृत है । इस संदर्भ में डा० रामविलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है । उन्होंने कहा –''प्रतिक्रियावादी ही कौन कहे कि प्रेमचंद और निराला की कुछ ऐसी लिख गए हैं, जिससे वे राजनीति में कुछ सीख सकते हैं ।''[2]

सामाजिक समस्याएँ :

राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन कुछ लोगों के लिए अंग्रेजों को हटाने भर का आन्दोलन था, इसके लिए वे समाज-व्यवस्था में परिवर्तन को आवश्यक नहीं मानते थे । लेकिन निराला की दृष्टि में स्वाधीनता आन्दोलन एक व्यापक आन्दोलन था, जिसके अनेक आयाम थे, उनमें एक सामाजिक पक्ष भी था, जो कि राजनीतिक

1- दूधनाथ सिंह,- निराला आत्महंता आस्था, पृ० 194

2- डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ० 27

पक्ष से घनिष्ट रूप से संबद्ध था । निराला राजनीति के लिए सामाजिक जागरूकता को आवश्यक समझते थे । यह तय है कि जब तक जनता में अपना भला-बुरा सोचने-समझने की शक्ति नहीं आती तब तक राजनीतिक विषयों के प्रति उसके विचार परिपक्व नहीं हो सकते । इसी स्थिति को लक्ष्य करते हुए निराला ने 'अलका' में लिखा -''देश की राजनीति की अभी ऐसी दशा नहीं कि बराबर का जोड़ हो, इसलिए सुधार की ही तरह सुधार करना चाहिए, नहीं तो हार अवश्य होगी । नेताओं के साथ अधिक संख्या में जनता सहयोग न करेगी । .... जनता मुँह फैलाए संवाद-पत्रों में स्वतंत्रता की राह देखती है ।''[1] इसलिए व्यापक सामाजिक क्रांति न केवल इसलिए जरूरी है कि पुरानी व्यवस्था सदियों पहले जर्जर हो चुकी है, वरन् इसलिए भी जरूरी है कि उसके बिना देश का राजनीतिक आन्दोलन सफल नहीं हो सकता ।

उल्लेखनीय है कि अपनी साहित्य-साधना के प्रारंभिक वर्षों से ही निराला ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन पर विचार करने के साथ ही अन्य सामाजिक प्रश्नों - वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति, अछूतोद्धार और नारी-समस्या आदि पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया था ।

ध्यातव्य है कि भारत में वर्ण-व्यवस्था के ध्वंस की प्रक्रिया अंग्रेजों के आने से पहले शुरू हो चुकी थी, लेकिन अंग्रेजों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उस टूटती हुई वर्णव्यवस्था को और दृढ़ बनाने का प्रयास किया, क्योंकि वे समझते थे कि भारत में वर्ण-व्यवस्था टूट गयी तो संभव है कि शोषित लोग एक जुट होकर उनका विरोध शुरू कर दें । उनके शासन में देशी सामंत और

1- निराला - अलका, पृ0 35

विदेशी पूँजीपतियों के दोहरे शोषण से भारत की निम्न समझी जाने वाली जातियाँ त्रस्त हो उठीं। इस स्थिति को लक्ष्य करके निराला ने 'प्रभावती' उपन्यास में लिखा–"गाँव में वर्णाश्रम धर्म की धाक थी। राजवंश के क्षत्रियों को छोड़कर और सभी जातियों को चाहे वृक्ष की बगल से कव्वा आ निकले, यदि ब्राह्मण बैठा हो, चारपाई छोड़कर उठना पड़ता था, गाँव में दिनभर यह कसरत जारी रहती थी।"[1] यह अछूतों के त्रास का एक रूप था। उच्च वर्ण वालों में भी श्रेष्ठता और निम्नता की भावना थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण में भी कई उप-जातियाँ बन गयी थीं। ये उप-जातियाँ एक-दूसरे को हेय समझती थीं। 'निरुपमा' उपन्यास में दो पात्र किसुन और वाजपेयी ब्राह्मण हैं, लेकिन वाजपेयी जी अपने को श्रेष्ठ समझते हैं, क्योंकि वे बीस बिस्वे के हैं जबकि किसुन कनवजिया।[2] इसी प्रकार 'पद्मा और लिली' में पद्मा की माँ कहती है "हाँ-हाँ ऊँचे कुल की लड़कियाँ ब्राह्मणों के नीचे कुल में गयी हैं।"[3] वर्ण-व्यवस्था का यह पतनशील रूप है।

वर्ण-व्यवस्था के कारण ही समाज में ऊँच-नीच, छुआ-छूत आदि कुरीतियों का जन्म हुआ। सामंती व्यवस्था ही वर्ण-व्यवस्था की जननी है। सामंती व्यवस्था में वस्तुओं का उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है। खेती से लेकर जरूरत की छोटी-मोटी चीजें बनाने का काम पूरा परिवार मिलकर करता है। इस तरह जो पेशा बाप का है, बेटा भी स्वाभाविक रूप से उसी को अपनाता है। इस तरह

1- निराला - प्रभावती (निराला रचनावली, भाग-3), पृ० 362-63

2- निराला - निरुपमा, पृ० 46, ग्यारहवीं आवृत्ति, 1975

3- निराला - लिली कहानी संग्रह, पृ० 19, संस्करण 1978

समाज में जो हाथ से काम करता है वह अत्यंज समझा जाता है और जो उनकी बनाई चीजों से सुख-सुविधा पाता है वह ऊँचा समझा जाता है । अर्थात् धनि-मनि, पहनने की सारी चीजें जो जुटाता है वह शूद्र है, जो उनके श्रम से लाभ उठाते हैं वे द्विज हैं । निराला ने वर्ण-व्यवस्था संबंधी अपने लेखों में इस व्यवस्था के खोखलेपन, इसके कारण निर्धन ब्राह्मणों में फैले हुए अहंकार और इसकी प्रासंगिकता के संबंध में विस्तार से विचार किया । निराला वर्ण-व्यवस्था की प्रासंगिकता – अप्रासंगिकता को इतिहास के संदर्भ में देखते थे । उनका विचार था कि किसी समय यह वर्ण-व्यवस्था भारतीय समाज का प्रगतिशील कदम था । सामाजिक जीवन को नियमित करने के लिए यह आवश्यक था । लेकिन उस समय यह कर्मगत हुआ करती थी, जन्मगत नहीं । आज स्थिति दूसरी है । आज वर्ण-व्यवस्था एक-दूसरे के शोषण का आधार बन गयी है, अतः आज यह अप्रासंगिक हो गई है । वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध निराला यह तर्क देते हैं कि पराधीन देश के नागरिकों में न कोई ब्राह्मण होता है न क्षत्रिय, दास होने के कारण वे सब समान रूप से शूद्र हो जाते हैं । इस स्थिति में अगर कोई अपने को श्रेष्ठ समझता है तो वह अपने को भुलावे में ही रखता है । निराला ने 'निरुपमा' में लिखा —''....देश गिरा हुआ है, गुलामी की कोई जाति नहीं ; फिर भी जातीय ऊँचाई का अभिमान लोगों की नस-नस में भरा हुआ है, इससे मानसिक और चारित्रिक पतन होता है।''[1]

अंग्रेजी राज में भुखमरी और बेकारी के कारण उच्च वर्ण वाले ठाकुर और ब्राह्मण भी जीविकोपार्जन के लिए दर-दर की खाक छान रहे थे । ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व का कोई भी प्रत्यक्ष आधार नहीं रह गया था । ब्राह्मण डयोढ़ी

1- निराला - निरुपमा, पृ0 27

पालिश और जूते की दूकान लगाने लगे थे । इस स्थिति में दो ही विकल्प सामने थे । एक तो यह कि फिर से वही वर्ण-व्यवस्था स्थापित की जाए जिसने कभी समाज में प्रगतिशील भूमिका निभाई थी या वर्ण-व्यवस्था को निर्मूल करके सदियों से सताये हुए शूद्रों को ऊपर उठने का मौका दिया जाए । निराला ने दूसरे विकल्प को श्रेयस्कर समझा । शूद्रों को प्रतिष्ठित करने के लिए ही निराला ने बिल्लेसुर और कुमार जैसे चरित्र की अवतारणा की । ये दोनों व्यक्ति जाति के ब्राह्मण हैं, लेकिन जीविकोपार्जन का जो साधन इन्होंने अपनाया वह शूद्रों का है । इन चरित्रों के माध्यम से निराला एक ओर शूद्र समझी जाने वाली जातियों के अन्दर यह बोध पैदा करना चाहते थे कि वे जो काम करते हैं वह हेय नहीं है, इसलिए शूद्र भी हेय नहीं हैं । दूसरी ओर वे उच्च वर्ण वालों को गुलाम देश में अपनी वास्तविक स्थिति से परिचित करा रहे थे । 'निरुपमा' उपन्यास का नायक कुमार यद्यपि ब्राह्मण है, लेकिन वह जूता पालिश का काम करता है । वह सोचता है- ''अगर इसी कार्य को महत्त्व देने के लिए अदृष्ट-चक्र से घूमता हुआ बहुभाषाविद और लन्दन विश्वविद्यालय का डी0लिट् होकर यह आया है, तो श्रद्धापूर्वक इसे स्वीकार करता है । .... शिक्षा ऐसा कार्य-सहयोग देकर भारत को सच्चे वर्ण-निर्माण की शिक्षा दे रही है ।''[1]

वस्तुतः निराला के मन में शूद्रों की स्थिति को लेकर विचारों की लहर उठती रहती है । उन्होंने कविताओं के साथ ही प्रायः अपने सभी श्रेष्ठ उपन्यासों और कहानियों में शूद्रों के पतन और शोषण का हृदय-विदारक चित्र खींचा है । 'कुल्लीभाट' में उन्होंने लिखा -''इनकी ओर कभी किसी ने नहीं देखा । ये पुरन्दर-पुष्प से सम्मान देकर नत-मस्तक ही संसार से चले गये हैं । संसार की सभ्यता

1- निराला - निरुपमा ,पृ0 24

के इतिहास में इनका स्थान नहीं । ये नहीं कह सकते, हमारे पूर्वज कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणाद थे, रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ हैं, अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं, अशोक विक्रमादित्य, हर्षवर्धन, पृथ्वीराज इनके देश के हैं, फिर भी ये ये और हैं ।''[1] अपनी श्रेष्ठ कविता 'तुलसीदास' में महाकवि तुलसीदास की मानसिक बनावट में निराला ने शूद्र-चिंता को रखा है –

''चलते फिरते पर निस्सहाय
वे दीन क्षीण कंकालकाय
. . . . . .
वे शेष-श्वास, पशु, मूक-भाष,
पाते प्रहार अब हताश्वास,
सोचते कभी, आजन्म ग्रास द्विजगण के
होना ही उनका धर्म परम ।''[2]

दरअसल तुलसीदास की यह शूद्र-चिंता निराला की अपनी चिंता है । इसी शूद्र-चिंता को उन्होंने 'कुल्लीभाट' में रखा है । कुल्ली अछूत हैं, लेकिन वे समाज से डरने वाले नहीं हैं । वे समाज के नेता हैं, अपने गाँव के लोगों को कांग्रेसी बनाने में लगे हैं, धोबी, चमार और कोरियों को शिक्षित करते हैं, और सबसे बड़ा क्रांतिकारी काम यह करते हैं कि दूसरे धर्म की स्त्री –मुसलमानिन से शादी करते हैं । कुल्ली के इन्हीं गुणों को देखकर निराला ने लिखा ''कुल्ली धन्य हैं, वह मनुष्य है, इतने जम्बुकों में सिंह है ।''[3] यही नहीं सवर्ण के विरुद्ध उनका आक्रोश कई रूपों में जाहिर होता है । उन्होंने 'कुल्लीभाट' में ही लिखा –

1- निराला - कुल्लीभाट, पृ0 63, संस्करण 1978
2- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0 213, प्रथम संस्करण 1983
3- निराला - कुल्लीभाट, पृ0 70

''हिन्दुओं ने बराबर समाज को धोखा दिया है।''[1] निराला कभी सवर्ण को सूत-बंदीगण कहते हैं, कहीं द्विज को चाटुकार कहकर उन्हें विश्वासघाती और संस्कृतिहीन बतलाते हैं, और कहीं अपने ब्राह्मण होने पर खेद प्रकट करते हुए द्विज के विषय में लिखते हैं –

''ये कान्यकुब्ज - कुल-कुलांगार
खाकर पत्तल में करें छेद ''[2]

'कालि कारनामे' में मनोहर कहता है –''हमारा समाज इस तरह स्वत्वहीन गुलामों का समाज हो रहा है और यह ब्राह्मणत्व।''[3] उसे ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने की बात बेमानी लगती है। निराला को वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप अप्रासंगिक और अकल्याणकारी लगता है; इसलिए वर्तमान हिन्दू समाज का विश्लेषण करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि –''शूद्र शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरणें फूटेंगी। वे ही भविष्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं, क्षत्रिय आदि दृप्त जातियाँ शूद्र।.... चिरकाल तक लड़कर ब्राह्मण, क्षत्रिय पस्त हो गये हैं। उनका कार्य अब वे जातियाँ करेंगी जो अबतक सेवा करती आई हैं। भारत तभी तक पराधीन है, जब तक वे नहीं जागतीं। उनका कर्म क्षेत्र पर उतरना भारत का स्वाधीन होना है।''[4] निराला अपनी रचनाओं में सदियों से उपेक्षित, दलित के उन्नयन और जन-साधारण को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील दिखते हैं। 'चतुरी चमार' में वे सारी जर्जर मान्यताओं को तोड़ते हुए अपने और चतुरी चमार के बीच चाचा-भतीजा का रिश्ता कायम करते हैं। निराला शूद्रों और

1- निराला - कुल्लीभाट, पृ0 73
2- सरोज-स्मृति (राग-विराग), पृ0 88
3- कालि कारनामे (निराला रचनावली, भाग-4), पृ0 227
4- निराला - प्रबंध प्रतिमा, पृ0 179 द्वितीय संस्करण 1963

दलितों के उन्नयन के लिए शिखा-सूत्र के त्याग को ही काफी नहीं समझते हैं । वे आचार और विचार दोनों से शूद्रों को ऊपर उठाने के लिए कृतसंकल्प हैं । इस कार्य के लिए वे युवा-शक्ति का आह्वान करते हैं । अछूतोद्धार के लिए 'काले-कारनामे' में मनोहर प्रयत्नशील है । ~~मनोहर सोचता है~~ निराला ने लिखा —''जो जातियाँ प्रजा के रूप में शूद्र कही जाती थीं, उनको उसने वैश्य के रूप में समझा, दिल से ब्राह्मण से भी उच्च ।''[1] मनोहर ने काशी में शूद्रों को शिक्षित करने का बीड़ा उठाया, यही नहीं वह उनके यहाँ जाकर खुल्लम-खुल्ला साग-पूड़ी खाने लगा । इस प्रकार का क्रांतिकारी काम निराला ने स्वयं भी किया था । वे चतुरी से गुरुदक्षिणा के रूप में बाजार से गोश्त मँगवाते हैं । उन्होंने चतुरी से कहा —''सिर्फ बाजार से हमारे लिए गोश्त ले आना होगा और महीने में दो दिन चक्की से आटा पिसवा लाना होगा ।''[2] इसी प्रकार का क्रांतिकारी काम 'श्यामा' कहानी में बंकिम करता है । वह अछूत कन्या श्यामा से विवाह करता है । उल्लेखनीय है कि निराला ने मनोहर और बंकिम जैसे लोगों को ऐसा क्रांतिकारी काम उस समाज में करते हुए दिखलाया जिसमें अछूतों की छाया पड़ने मात्र से व्यक्ति को गोबर से नहलाकर शुद्ध किया जाता था । इस तरह की रूढ़ियों को निबाहना निराला की दृष्टि में ज्ञान-शून्य कर्म था, जिससे समाज की प्रगति बाधित होती है । अन्य समस्याओं की तरह रूढ़ियों से संघर्ष की समस्या भी निराला के लिए राष्ट्रीय अभ्युत्थान की समस्या से जुड़ी हुई थी । भारतीयता के नाम पर प्राचीन रूढ़ियों और प्रथाओं से चिपके रहकर भारत की प्रगति की बात सोचना व्यर्थ है । यहाँ पुरानी प्रथाओं के त्याग से निराला का तात्पर्य यह नहीं है कि हमारा धर्म

1- निराला - काले कारनामे (निराला रचनावली, भाग-4), पृ० 253

2- चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ० 8

नष्ट हो गया । ''धर्म-निरपेक्षतावादियों की तरह निराला भी धर्म को मनुष्य की भीतरी प्राणों की भावना मानते थे । किंतु धर्म-निरपेक्षतावादी जहाँ धार्मिक अंध-विश्वासों और सामाजिक रूढ़ियों के बारे में मौन साध लेते हैं, निराला वहाँ मुखर होकर उनका विरोध करते थे ।''[1] उनका यह विरोध 'बिल्लेसुर बकरिहा' में अपने पूरे तेवर के साथ प्रकट हुआ है । बिल्लेसुर गरीब ब्राह्मण है । अकेले है इसलिए वे अपनी बकरियों की रक्षा का भार महावीर जी की मूर्ति पर सौंपते हैं, लेकिन एक दिन जब उनका प्यारा बकरा 'दिनवा' नहीं मिलता है तब वे क्रोध में भरे हुए महावीर जी की मूर्ति पर डंडे से प्रहार करते हैं । यहाँ महावीर की मूर्ति पर प्रहार वस्तुतः धार्मिक रूढ़ियों पर प्रहार का प्रतीक है । अपनी 'दान' शीर्षक कविता में भी वे इन्हीं रूढ़ियों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं –

''दुख पाते जब होते अनाथ,
कहते कपियों से जोड़ हाथ,
मेरे पड़ोस के वे सज्जन ;''[2]

रूढ़ियों की रक्षा के लिए पुरानपंथी, जड़ विश्वास वाले हमेशा भारतीयता की दुहाई दिया करते हैं । निराला ने अपने निबंधों में इस प्रश्न को उठाया कि क्या भारतीयता की रक्षा करने का यही अर्थ है कि निरर्थक रूढ़ियों का पालन किया जाए? मनुष्य की रूढ़िवादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया-स्वरूप ही निराला में विद्रोह और व्यंग्य की प्रवृत्ति जगी । उन्होंने महसूस किया कि ये रूढ़ियों के दास जो अपने को धर्मात्मा समझते हैं, वास्तव में मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं है । ऐसे ही पोंगा पंडितों पर व्यंग्य करते हुए निराला ने लिखा–

1- डा0 रामविलास शर्मा -निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ0 44

2- निराला - दान (निराला रचनावली, भाग-1), पृ0 291

''झोली से पुए निकाल लिए,
बढ़ते कपियों के हाथ दिए,
देखा भी नहीं उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर मानव,
बोला मैं – धन्य श्रेष्ठ मानव !''[1]

ये ही लोग हिन्दू धर्म के रक्षक हैं । इनके मन में मनुष्य के लिए कोई सहानुभूति नहीं है, लेकिन ये पेड़-पौधे और पशुओं को पूजते चलते हैं । ऐसे ही हिन्दुओं से 'कुल्लीभाट' में कुल्ली की मुसलमान पत्नी पूछती है –''यह हिन्दुओं का खरापन है या दोगलापन ?''[2] इन्हीं अंशों में नयी चेतना दिखलाने के लिए निराला ने 'चमेली' उपन्यास में चतुरी के भाई-बन्धु महादेव के द्वारा ठाकुर बख्तावर सिंह की पिटाई वाले प्रसंग का चित्रण किया है ।

नारी-समस्या :

निराला ने स्वाधीनता आन्दोलन की सफलता के लिए जर्जर समाज-व्यवस्था को बदलने के साथ ही नारी-उत्थान पर भी जोर दिया । उन्होंने अपने कथा-साहित्य में नारी -जीवन के विभिन्न पक्षों, विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है तथा उनके समाधान के उपाय भी सुझाए हैं ।

विदित है कि भारत में वैसे तो नारी जाति ही दुरावस्था को प्राप्त है, लेकिन उसमें भी विधवाओं की स्थिति और भी करुणाजनक है । विधवाओं की करुण दशा का चित्रण उन्होंने 'अलका' में इस प्रकार किया है –''इसी भारत में आश्रयहीन बालिका और तरुणी विधवाएँ भी हैं । उन्हें खाने को नहीं मिलता, भूखा

1- निराला रचनावली , भाग-1, पृ0 291
2- कुल्लीभाट, पृ0 90

के कारण विधर्म को भी उन्हें ग्रहण करना पड़ता है, चिर संचित सतीत्व धन से भी हाथ धोती है।''[1] विधवाओं से अधिक करुण स्थिति इस संसार में और किसी की नहीं है। वह जीती है, लेकिन उसका जीवन पशुओं से भी बदतर है। सारे समाज के लोलुप पुरुषों की नजर उसे बेधती है। स्वयं अपने घर में भी वह अपने को सुरक्षित महसूस नहीं करती है। इसी स्थिति की ओर संकेत करते हुए निराला ने लिखा —''क्या विधवा जैसी विधाता की दूसरी भी सृष्टि होगी, जो सखियों में भी खुले प्राणों से बातचीत नहीं कर सकती, भोग सुख वाले संसार के बीच में रहकर भी जिसे भोग-सुख से विरत रहना पड़ता है, आँख के रहते भी जिसे चिरकाल तक दृष्टिहीन होकर रहना पड़ता है ?''[2] विधवाओं की इस दुरावस्था का सबसे बड़ा कारण है समाज की दुहरी नैतिकता। पुरुष चाहे पापाचारी हो, लेकिन पत्नी वह पतिव्रता ही चाहता है, यही नहीं वह अपने को देवतुल्य समझता है, लेकिन उसी पुरुष की हवस की शिकार नारी को समाज हेय दृष्टि से देखता है, उसकी जिन्दगी नर्क बना दी जाती है। 'कमला' कहानी की नायिका कमला ऐसी ही युवती है। लोगों के बहकावे में आकर उसका पति रमाशंकर उसे छोड़ देता है। अब कमला का कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है। ''अब उसे कोई इच्छा नहीं, प्राणों में कोई रंग नहीं, है केवल तपस्या जिस पर एक हिंदू महिला विश्वास की डोर पकड़े हुए अपना कुल जीवन निछावर कर देती है।''[3] इन विधवाओं के करुण-क्रंदन से आकाश गूंजता रहता है। लेकिन निराला के चिंतन की यह विशेषता है कि उन्होंने विधवाओं की करुण-स्थिति का ही चित्रण नहीं किया है बल्कि नारी में वैधव्य से उत्पन्न परिस्थितियों से जूझने की अदम्य शक्ति है —उसे भी उजागर किया

1- अलका, पृ० 29

2- वही, पृ० 102

3- कमला- लिली कहानी संग्रह, पृ० 40-41

है । यद्यपि परित्यक्ता कमला के पास जीवन-यापन का कोई साधन नहीं है, फिर भी वह हार नहीं मानती । वह संघर्ष करती है । उसमें भी वैसी ही जिजीविषा है जैसी बिल्लेसुर में है । उसने ''एक सिंगर की मशीन खरीद ली है । रूमाल, कमीज, कुर्ते आदि सीती, सभी कपड़ों पर झंपि लगाकर बेल-बूटे काढ़ती है..... उसकी मौसी माल बाजार में बिकवा देती है ।''[1] इसी तरह की जिजीविषा लीला में भी है । ''वह ट्यूशन से अपना खर्च चलाती है, छोटे भाईयों को भी पढ़ाती है ।''[2]

निराला नारी स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे । इसलिए उन्होंने नारी-पर्दे की रानी है जैसी मान्यताओं का खण्डन किया । उन्होंने नारी को अपनी रचनाओं में शक्ति-रूपा के रूप में चित्रित किया । उनके कथा-साहित्य की नारियाँ समाज के हर जुल्म को आँख-मूँदकर बर्दाश्त करने वाली नहीं है । वे अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजग है । समय पड़ने पर वे सिर्फ पुरुषों के कंधे-से-कंधा मिलाकर ही नहीं चलती बल्कि उनसे भी बढ़ा काम करती है । 'प्रभावती' उपन्यास में यमुना का चरित्र ऐसा ही है । वह कहती है -''हमारी जाति, धर्म और देश की रक्षा की जो समस्या पुरुषों के सामने है, वही हमारी सामने भी है । आज क्षत्रिय अपने दर्प से आप चूर्ण हो रहे हैं, पर उन्हें सम्भालकर उल्टा जवाब वे नहीं दे सकते । ..... क्या हम चुपचाप अपने ऐसे पुरुषों का अनुकरण करती रहें । मैं ऐसा नहीं समझती । यह ठीक है कि हमारी न चलेगी, पर तो भी हमें अपने लिए सचेत होना है ।''[3] इसी उपन्यास की दूसरी नारी पात्र रत्नावली अपने राज्य के वीरों को अत्याचारी राजा के खिलाफ संगठित करती है

1- कमला (लिली कहानी संग्रह), पृ० 41
2- सखी (चतुरी चमार कहानी संग्रह), पृ० 20
3- प्रभावती (निराला रचनावली, भाग-3), पृ० 261-62

वह कहती है --''धीरो, तुम राजा के लिए कटकर मर जाते हो, पर अपने लिए सिर भी नहीं उठाते । तुम पर अत्याचार बढ़ते ही जा रहे हैं, पर तुम एक बार भी अपनी सदाचारिता प्रदर्शित नहीं करते ।''[1] स्वाधीनता संग्राम में निराला नारी की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं । उन्होंने अपने निबंध में लिखा --''वर्तमान आन्दोलन को जीवित कर रखने में हमारी महिलाओं ने देश की जो सेवा की और करती जा रही हैं, वह अनमोल है ।''[2] आज स्त्रियों में समाज से लड़ने की भी क्षमता आ गयी है -- यह निराला ने 'ज्योतिर्मयी' में दिखाया है । पुनर्विवाह के बाद ज्योतिर्मयी समाज - शोक और दहेज के लालची अपने पति को धिक्कारती हुई कहती है --''धिः । मैंने यह क्या किया । यह वही विजय-संयत, शांत वही विजय, और कैसा परिवर्तन, इसके साथ जब अपराधी की तरह सिकुड़कर घर के एक कोने में मुझे सम्पूर्ण जीवन पार करना होगा । इससे मेरा वैधव्य शतगुण, सहस्रगुण अच्छा था ।''[3]

उल्लेखनीय है कि निराला स्त्रियों की स्वाधीनता को देश की स्वाधीनता से जोड़कर देखते हैं । उनका विचार है कि स्त्रियों की दासता का अंत होना चाहिए, तभी देश के राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन में पूरी शक्ति आ सकेगी। ''अब घर के कोने में समाज और धर्म की साधना नहीं हो सकती । जमाने ने रुख बदल दिया है । हमारी देश की लड़कियों पर बड़े-बड़े उत्तरदायित्व आ पड़े हैं । उन्हें वायु की तरह मुक्त रखने में ही हमारा कल्याण है । तभी वे जाति, धर्म तथा समाज के लिए कुछ कर सकेंगी ।''[4]

1- निराला - प्रभावती (निराला रचनावली, भाग-3), पृ० 314

2- वर्तमान आन्दोलन में महिलाएँ (निराला रचनावली, भाग-6), पृ० 301

3- निराला - ज्योतिर्मयी ('लिली' कहानी संग्रह), पृ० 32

4- प्रबंध प्रतिमा, पृ० 91

उन्होंने स्त्रियों में नयी चेतना भरते हुए कहा - अब वह समय नहीं रहा कि स्त्रियाँ चित्र लिखे रूपि को देखकर डर जाएँ । स्त्रियों में नयी चेतना आए - इसके लिए शिक्षा की सख्त आवश्यकता है । शिक्षा के अभाव के कारण ही स्त्रियाँ न तो अपने अधिकारों को समझ पाती हैं और न कर्त्तव्यों के प्रति सजग हो पाती हैं । शिक्षित होने के बाद ही स्त्रियाँ ज्ञान और कर्म के क्षेत्र में पुरुषों से कंधे-से-कंधा मिलाकर चल सकती हैं । इस संदर्भ में 'अलका' उपन्यास की नायिका अलका को देखा जा सकता है । गाँव की अशिक्षित अलका अपने स्वत्व की रक्षा करने में असमर्थ रहती है, लेकिन वही अलका शिक्षित होने के बाद देश सेवा करती है, कुलियों के बच्चों को पढ़ाती है और मुरलीधर से अपने सतीत्व की रक्षा करती है । इसी बदली चेतना की अभिव्यक्ति 'काले कारनामे' की रानी विमला के कथन से होती है । वह मनोहर से कहती है -''देश के युवक अब हम वह नहीं हैं, मगर देश की भलाई के लिए तुम्हारे साथ हैं । हमारी जो तौहीन होती है उसके निराकरण के लिए कम-से-कम हजार युवक तैयार कर दो ।''[1]

शिक्षा के अभाव के कारण ही स्त्रियों को आर्थिक रूप से पुरुषों पर आश्रित रहना पड़ता है । आर्थिक रूप से पराश्रयी होने के कारण उन्हें घर की चारदीवारी के भीतर कैद रहकर अनेक प्रकार के अत्याचार सहने पड़ते हैं । ''उनके साथ जो पाशविक अत्याचार किए जाते हैं, उनका कोई प्रतिकार नहीं होता । वे चुपचाप आँसुओं को पीकर रह जाती हैं ।''[2] आर्थिक पराधीनता के

1- निराला - काले कारनामे (निराला रचनावली-भाग-4), पृ0 255

2- निराला - प्रबंध प्रतिमा, पृ0 90

कारण ही समाज में दोहरी नैतिकता का निर्माण होता है । स्त्रियों और पुरुषों के लिए अलग-अलग सामाजिक नियम बने । पुरुष विधुर हो जाए तो वह दूसरा विवाह कर सकता है, यही नहीं एक साथ वह कई पत्नियाँ रख सकता है, लेकिन स्त्री के विधवा हो जाने के बाद यह चाहता है कि वह अपने स्वर्गीय पति को याद करते हुए सारा जीवन बिताए । इस दोहरी नैतिकता से क्षुब्ध होकर निराला ने 'देवी' कहानी में लिखा -''सीता, सावित्री, दमयंती आदि की पावन कथाएँ आँख मूँदकर लिख सकता हूँ । सब बीवी के साथ 'सीता' और 'सावित्री' आदि देकर बगल में 'चौरासी आसन' दबाने वाले दिल से नाराज न होंगे ।''[1]

निराला के नारी विषयक चिंतन की यह विशेषता थी कि उन्होंने भारतीय नारी को - सारी यातनाओं को चुपचाप झेलनेवाली आदर्श मूर्ति के रूप में नहीं बल्कि जीती-जागती, हाड़-मांस से बनी, सुख-दुःख को अनुभव करने वाली नारी के रूप में चित्रित किया ।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या :

निराला ने भारतीय समाज की प्रगति के लिए वर्ण-व्यवस्था का विरोध, अछूतोद्धार तथा नारी-उत्थान के साथ ही हिंदू-मुस्लिम एकता की भी आवाज उठायी । राष्ट्रीय एकता के लिए वे हिंदू-मुस्लिम एकता को अनिवार्य समझते थे । इसलिए उनका कहना था कि दोनों जातियों को परस्पर शत्रुता का भाव न रखकर राष्ट्रीय जीवन का अंग बनना चाहिए । उन्होंने 'समन्वय' पत्रिका में लिखा ''भारत

1- निराला - चतुरी चमार, पृ० 39

में कितनी भिन्न-भिन्न जातियाँ बस गयी हैं, जिन्हें हिंदू शत्रु-तुल्य समझते हैं और जो हिंदुओं से जैसा का तैसा ही बदला लेती हैं, वे यदि जातीय जीवन का अंग न मानी जाएँ – तो जाति की सत्ता कब तक सही-सलामत टिकी रहेगी ।''[1]

विदित है कि अंग्रेजों ने अपनी 'फूट डालो और शासन करो' नीति के तहत् भारत में हिंदू-मुसलमान के बीच फूट के बीज बोये । अंग्रेजों के आने के पहले भारत में हिंदू-मुसलमान में एकता के अद्भुत दृश्य देखे गये । साहित्यिक क्षेत्र में भी पन्द्रहवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक सूफी कवियों ने भारतीय गाथाओं में जो काव्य रचा उसमें दोनों धर्मों की कट्टरता की आलोचना की । कबीर ने दोनों धर्मों की रूढ़ियों की आलोचना करते हुए दोनों को एक ही भाव-भूमि पर खड़ा करने का प्रयास किया । नजीर अकबराबादी ने कृष्ण के बालरूप की स्तुति की । बीसवीं सदी में उनकी परंपराओं को आगे बढ़ाते हुए निराला ने अपने लेखन और कर्म के द्वारा हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रशंसनीय कार्य किया । वस्तुतः ''पन्द्रहवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक द्विज और शूद्र का भेद मिटाने वाली धार्मिक रूढ़ियों का निषेध करके हिंदुओं और मुसलमानों की एकता को दृढ़ करने वाली साहित्य की जो शक्तिशाली धारा प्रवाहित हुई थी, बीसवीं सदी में उसके सच्चे, समर्थ और सबसे बड़े प्रतिनिधि थे सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ।''[2] निराला ने 'कुल्लीभाट' में कुल्ली को हिंदू-मुसलमान की सांस्कृतिक एकता के समन्वय के प्रतीक के रूप में देखा । कुल्ली के सारे समाज का

1- डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ० 51

2- वही, पृ० 53

विरोध सहकर मुसलमान औरत से शादी की । उनके इस क्रांतिकारी काम से पंडितों और मुल्लाओं ने बहुत हाय-तौबा मचायी । इन दोनों धर्मों के ठेकेदारों पर व्यंग्य करते हुए कुल्ली ने कहा — "मुसलमान इसलिए नाराज हैं कि मुसलमानिन ले आया हूँ । और हिंदू कुछ गाते हो — दिल ही तो है न, सगोचित्त दर्द से भर न आये क्यों ? फिर नाराज क्यों होते हो ? क्या यह भी कहीं लिखा है कि दिल सिर्फ मुसलमान के होता है ? और हिंदू, हिंदू हैं बुजदिल ।"[1] हिंदू-मुसलमान में एकता स्थापित करने के लिए ही निराला कुल्ली की मुसलमान औरत के घर हवन कराने जाते हैं — सारी धार्मिक रूढ़ियों को तोड़कर ।

सांस्कृतिक पक्ष :

निराला ने भारत को उन्नत और समृद्ध बनाने के लिए भारत की सांस्कृतिक एकता की बात की । विदित है कि साम्राज्यवाद के जैसे राजनीतिक दाँव-पेंच हैं, वैसी ही उसकी सांस्कृतिक नीति भी है । साम्राज्यवाद से जहाँ तक बन पड़ा उसने न केवल गुलाम देश का आर्थिक शोषण किया, बल्कि उनकी भाषा का भी नाश किया । साम्राज्यवादियों ने दक्षिणी अफ्रीका, रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड - आदि गुलाम बनाए हुए देशों की भाषाओं, संस्कृतियों एवं उन देशों के मूल निवासियों को भी बर्बाद किया । वस्तुतः साम्राज्यवादियों की साम्राज्य-लालसा को तुष्ट करने का साधन उनकी सांस्कृतिक नीति है । ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भी अपनी सांस्कृतिक नीति के तहत भारतीय भाषाओं को हेय दृष्टि से देखते हुए भारत में अंग्रेजी शिक्षा का

1- निराला - कुल्लीभाट, पृ0 7।

प्रचार-प्रसार किया । अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के पीछे अंग्रेजों की योजना एक अंग्रेजी पढ़े-लिखे ऐसे बाबू वर्ग को तैयार करने की थी जो न सिर्फ उनके काम-काज को सुचारु-रूप से चलाने में मदद दे, बल्कि जो साम्राज्यवाद को भी कायम रखने में मदद करें । उनकी सांस्कृतिक नीति का एक पक्ष यह भी था कि भारतीय समाज को, यहाँ की भाषा और इतिहास को विकृत किया जाए, भारत-वासियों में अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति हीन भावना पैदा की जाए । निराला ने अंग्रेजों की इस सांस्कृतिक नीति को उनके साम्राज्यवादी नीति से जोड़कर देखा और इसका बड़ा विरोध किया । इसके साथ ही लोगों का ध्यान इस तथ्य की ओर खींचा कि अंग्रेज अपनी चाल में इसलिए सफल हो रहे हैं, क्योंकि भारत की आम जनता अशिक्षित है, उसके जाति, धर्म और नारी विषयक विचार प्रगतिशील और समयानुकूल नहीं है । अतः इस अज्ञान के गहन अंधकार से निकलने के लिए शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है ।

निराला ने सबसे पहले किसानों की शिक्षा की अनिवार्यता की बात की । उनका विचार था कि किसानों को शिक्षित किए बिना, उनके साथ रहकर, उन्हीं का सा जीवन बिताकर उनका संगठन किए बिना भारत किसी भी प्रकार की गुलामी से मुक्त नहीं हो सकता है । राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता से किसानों की शिक्षा से जोड़ते हुए उन्होंने कहा कि राजनीतिक प्रचार का उद्देश्य यह होना चाहिए कि किसान शिक्षित हों, उनमें यह योग्यता उत्पन्न हो कि वे राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं पर विचार कर सकें। सिर्फ नेताओं के जेल जाने से देश का कल्याण संभव नहीं है । इसी स्थिति को लक्ष्य करके उन्होंने 'अलका'

में लिखा "..... जो लोग वास्तव में क्षेत्र में उतरकर देश के लिए कार्य करते हैं, वे यदि इन किसानों की शिक्षा के लिए सोचें, हर जिले के आदमी, अपने ही जिले में जितने हों, उतने केन्द्र कर अर्थात् उतने गांव में, इन किसानों को केवल प्रारंभिक शिक्षा भी दे दें, तो उनके जेलवास से ज्यादा उपकार हो।"[1] शिक्षा इसलिए भी आवश्यक है कि "किसी भी प्रकार का सुधार पहले मस्तिष्क में होता है। जहाँ मस्तिष्क ही न हो, वहाँ नेता की आवाज का क्या असर हो सकता है।"[2] यह जानी हुई बात है कि किसान जब तक शिक्षित न होंगे तब तक वे अपने अधिकारों और कर्तव्यों से अनभिज्ञ रहेंगे।

किसानों की शिक्षा के लिए निराला ने क्रांतिकारी वीरों का आह्वान किया। भारत में कांग्रेस के नेतृत्व में जो स्वाधीनता आन्दोलन चला, उसमें किसानों को शिक्षित कर उन्हें आन्दोलन में उतारने का कोई कार्यक्रम न था, लेकिन कांग्रेस यह जरूर चाहती थी कि किसान भी इसमें भाग लें। इस संदर्भ में निराला का कहना था कि -"गांव में अभी तक कोई स्वराज का नाम नहीं जानता"[3] इसलिए पहले किसानों को शिक्षित करके ग्राम प्रचार और ग्राम संगठन की आवश्यकता है।

'अलका' में क्रांतिकारी युवक अजित अशिक्षा के कारण उत्पन्न किसानों के मैलेपन और अज्ञानता की चर्चा करते हुए कहता है -"आप लोग एक दिन में न समझेंगे। क्योंकि ठगने और ठगा जाने की आदत आपलोगों की रग-रग में भर गयी है। महाजन, जमींदार, वकील, धर्म, समाज और शास्त्रों से ठगा जाना आपलोगों

1- निराला - अलका, पृ0 33- 34

2- वही, पृ0 33-34

3- डा0 रामविलास शर्मा -निराला की साहित्य-साधना, भाग-2, पृ0 23

का स्वभाव बन गया ।"[1] उनको इस स्थिति से उबारने का जिम्मा अजित का दोस्त विजय उठाता है । किसानों के संगठन की आवश्यकता पर बल देते हुए विजय कहता है -"जमींदार के उपद्रवों से बचने के लिए गाँव के लोगों को किस प्रकार संगठित होना चाहिए, एक अलग कोष, सर्वसाधारण की भलाई के लिए एकत्र कर रखने पर मौके पर काम देता है, नहीं तो उपाय-शून्य गरीब रियाया जमींदार का मुकाबला नहीं कर सकती, फूटकर एक-एक आदमी जमींदार से कमजोर होने के कारण लड़ नहीं सकते, इसलिए उनका संगठन जरूरी है, जो रोज प्रतिदिन पेट उतना अन्न निकालकर एक हंडी में रख दिया जाए और महीने के अंत में गाँव भर का अन्न एकत्र कर बेचा जाए तो उसी अर्थ से एक शिक्षक रखकर वे अपने बालकों को प्रारंभिक शिक्षा दे सकते हैं .... जब तक रियाया अपने अर्थ को पूरी मात्रा में नहीं समझती, तब तक दूसरे समझदार का जुआ उसके कंधे पर रखा रहेगा, अज्ञान के अंधेरे गड्ढे से बाहर उजाले में खिले हुए फूलों से दूसरे देशों के किसानों की दशा और सुधार का ज्ञान प्राप्त करना यहाँ के किसानों के लिए बहुत जरूरी है । यहाँ लोग यह भी नहीं जानते कि किस तरह दस मन की जगह पंद्रह मन अनाज पैदा किया जा सकता है ; क्योंकि यहाँ के लोग बड़े दुःखी और सताए हुए रहते हैं ।"[2]

अशिक्षा के कारण ही किसान अपने वर्ग-भेद को समझने में असमर्थ हैं । इसलिए वे जमींदार के खिलाफ संगठित नहीं हो पाते । यही नहीं अज्ञानतावश

1- निराला - अलका, पृ0 62

2- वही, पृ0 48 - ५९

ये एक दूसरे के दुःख का कारण भी बनते हैं । 'अलका' उपन्यास में लक्खू के कारण बुधुआ कड़ी यातना सहता है । वह जमींदार कृपानाथ की कृपादृष्टि पाने के लिए बुधुआ की झूठी शिकायत करते हुए कहता है — "यह सुराज की खोज में नेता की तरह है । सरकार और जिमींदार के दो पाटों में रखकर पिसने से नहीं डरता । लोगों को अपनी लीक पर ले चलने के लिए बछड़े के जैसे पेरता है । कहाँ से भगवान जाने इसके पास खबर आती है, अब रियाया को लगान न देना होगा । दिनभर इसी काम में तत्पर रहता है ।"[1] अशिक्षा और अज्ञान के कारण ही भारत के किसान वर्ण-व्यवस्था को ईश्वरकृत मानते हैं । वह अपने शोषण को पूर्वजन्म के कर्मों का फल समझता है । 'अलका' में बच्चन सोचता है कि — "अगर बेगार न करनी होती, तो चमार के बदले वह जमींदार होकर न पैदा होता ? जब ब्राह्मण ठाकुर नहीं, तब ईश्वर ने ही उसे बेगार खटने वाला चमार बनाकर भेजा है । करनी का फल तो सभी को भोगना पड़ता है ।"[2] लेकिन दूसरी ओर शिक्षित कुल्ली अछूत होते हुए भी अपने अधिकारों के प्रति सजग है । वे यह समझते हैं कि ये शोषक शासक अज्ञानी और भोले-भाले लोगों को ढंग से जीने नहीं देंगे । कुल्ली निराला से कहते हैं — "जब तक दम नहीं निकलता । जब तक हैं, तब तक सबके जो अधिकार हैं, मुझे भी हैं ।"[3]

निराला ने किसानों की शिक्षा के साथ ही नारी-शिक्षा की आवश्यकता पर भी जोर दिया । पहले स्त्री-पुरुष के कार्य-क्षेत्र अलग-अलग थे । स्त्रियाँ घर

1- निराला - अलका, पृ0 48

2- वही, पृ0 54

3- निराला - कुल्लीभाट, पृ0 73

सम्भालती थी, पुरुष बाहर का काम करते थे । लेकिन आज के युग में स्त्रियों को घर की चारदीवारी में कैद करके रखने से देश और समाज की उन्नति नहीं हो सकती है । आज दोनों का धर्म एक होना चाहिए । पुरुष के न रहने पर स्त्री हाथ समेट कर निश्चेष्ट न बैठी रहे, वह सही ढंग से सन्तान का पालन करे — आज इसकी सख्त आवश्यकता है । स्त्री इन कार्यों को उसी स्थिति में सही तौर पर कर सकती है जब वह शिक्षित हो ।

आज शिक्षा के अभाव के कारण ही स्त्रियों - खासकर विधवाओं और परित्यक्ताओं की दुर्दशा हो रही है । वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं हैं, इसलिए उन्हें पुरुष वर्ग के अत्याचार को चुपचाप सहना पड़ता है । इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए भी शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है । इस संबंध में निराला ने लिखा —''हमारे देश में स्त्रियों की शिक्षा के अभाव में जैसी दुर्दशा हो रही है, उसकी वर्णना असंभव है । उनका क्रन्दन देखकर पाषाण भी गल जाते हैं । प्रतिदिन भारतवर्ष का आकाश स्त्रियों के क्रंदन से गुंजित रहता है । युवती विधवाओं के आंसुओं का प्रवाह प्रतिदिन बढ़ता जाता है ।''[1] अशिक्षित होने के कारण ही हमारे देश की स्त्रियों को नारकीय जीवन जीने को मजबूर होना पड़ता है ।

निराला इस विचार से सहमत थे कि एक पुरुष के शिक्षित होने से एक व्यक्ति शिक्षित होता है, जबकि एक स्त्री के शिक्षित होने से पूरा परिवार शिक्षित होता है । इसलिए शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा विभिन्न प्रकार की सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति के लिए स्त्री-शिक्षा अनिवार्य है । निराला ने राष्ट्रीय स्वाधीनता

1- निराला — प्रबंध प्रतिमा, पृ० 89

आन्दोलन में स्त्रियों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना है । उनका कहना था कि स्त्रियाँ तभी अपनी भूमिका सही ढंग से निभा सकती हैं जब उन्हें देश की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति की सही समझ होगी और यह समझ तभी पैदा हो सकती है जब स्त्रियाँ शिक्षित हों । इसलिए "जब तक स्त्रियों में नवीन जीवन की स्फूर्ति भर नहीं जायेगी तब तक गुलामी का नाश नहीं हो सकता ।"[1] उल्लेखनीय है कि निराला ने अपने कथा-साहित्य में जितनी नारी पात्रों की अवतारणा की है वे प्रायः शिक्षित नारियाँ ही हैं । वे शिक्षित हैं इसलिए वे अपनी वास्तविक स्थिति, अपने अधिकारों और कर्तव्यों से परिचित हैं । अलका, यमुना, निरुपमा, रानी विमला, ज्योतिर्मयी आदि नारियाँ भारत की अशिक्षित स्त्रियों में नयी चेतना भरने का काम करती हैं । इन्हीं स्त्रियों को लक्ष्य करके स्नेहशंकर अलका से कहते हैं -"तू महाशक्ति है, जितना परिचय शक्ति का तूने दिया है, उससे अधिक मृत्यु के सामने भी जरूरत नहीं । भरोसा रख । सदा समझ, भारत की दुःखी विधवाएँ, महिलाएँ तुझे चाहती हैं ।"[2]

वस्तुतः निराला का यह दृढ़ विश्वास है कि "जितने प्रकार के दैन्य हैं, जितनी कमजोरियाँ हैं, उन सबका शिक्षा के द्वारा ही नाश हो सकता है।"[3] उन्होंने 'अलका' में लिखा "ज्ञान की शांति में दुःख की सब ज्वाला बुझ जायेगी ....."।[4] इसलिए वे बार-बार किसान-शिक्षा और नारी-शिक्षा की आवश्यकता पर जोर देते हैं ।

विदित है कि निराला के जीवन के प्रारंभिक वर्ष कलकत्ते में बीते । उस समय कलकत्ता सिर्फ वाणिज्य और व्यवसाय का ही केन्द्र नहीं था बल्कि शिक्षा,

---

1- निराला - प्रबंध प्रतिमा, पृ0 92
2- निराला - अलका, पृ0 30
3- वही, पृ0 29
4- निराला -प्रबंध प्रतिमा, पृ0 90

संस्कृति और आध्यात्म का भी केन्द्र था । राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद, इन तीनों का कर्मक्षेत्र कलकत्ता ही था । इन्होंने जिस सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना से पूरे भारत को आप्लावित किया था, इसी चेतना ने निराला के संवेदनशील मन पर गहरा प्रभाव डाला ।

ज्ञातव्य है कि ब्रह्म-समाज ,आर्य-समाज और रामकृष्ण मिशन जैसे समाज-सुधारक संस्थाओं ने भारतीय चिन्तन को नई सांस्कृतिक दिशा प्रदान करते हुए समाज में प्रचलित अनेक क्षु कुरीतियों को दूर करने का जो गुरुत्तर भार उठाया था, निराला ने उसी परंपरा का पालन अपने शब्द और कर्म के द्वारा किया । विदित है कि निराला पर परमवेदांती रामकृष्ण और विवेकानंद का गहरा प्रभाव था । इनसे उन्होंने धार्मिक उदारता का भाव ग्रहण करते हुए द्विज और शूद्र, नारी और पुरुष, हिन्दू-मुस्लिम धर्म की समानता तथा धार्मिक अंधविश्वासों को तोड़ने की बात कही ।

ध्यातव्य है कि नवीं सदी के आरंभ में शंकराचार्य (जन्म 788) ने भारतीय चिंतन-धारा में भारी परिवर्तन किया । उनका कहना था कि यह संसार माया है, जैसा दिखाई देता है वैसा नहीं है, ब्रह्म मनुष्य के भीतर है । शंकराचार्य के इसी अद्वैत विचारधारा का आश्रय लेकर निराला ने कहा कि जब संसार माया है, सारे जीव ब्रह्म के ही अंश हैं, तब समाज में ऊँच-नीच का भेद-भाव, जातिप्रथा, वर्ण-व्यवस्था भी भ्रम है, झूठ है, माया है । भक्तिकाल में भी कबीर, दादू आदि निर्गुणियाँ संतों ने वर्ण-व्यवस्था, धार्मिक अंधविश्वासों आदि का विरोध शंकर की विचारधारा का आश्रय लेकर ही किया था । यद्यपि शंकराचार्य ने सांसारिक और पारमार्थिक सत्य में भेद करते हुए व्यवहार में वर्ण-व्यवस्था को

स्वीकार किया था, ''किंतु यह ऐतिहासिक सत्य है कि वेदांत का उपयोग भारतीय साहित्य में वर्ण-व्यवस्था के विरोध के लिए किया गया।''[1] निराला ने ज्ञानाश्रित व्यावहारिक वेदांत का सहारा लेकर सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रांति की। उनका विचार था कि जब तक हमारी कर्म ज्ञानाश्रित नहीं है तब तक हम न तो सामाजिक पराधीनता के और न राजनैतिक पराधीनता के बंधन को काट सकते हैं।

निराला ने वेदांत का सहारा लेकर एक-एक व्यक्ति के महत्व को स्थापित किया। व्यक्ति की महत्ता को बतलाते हुए उन्होंने 'सुधा' पत्रिका में लिखा ''राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद ये सब आदर्श व्यक्ति होंगे, पर उनके पीछे जान देना मनुष्यता से दूर समझा जायेगा। आप, हर मनुष्य की वही कीमत है जो राम, कृष्ण, और ईसा, मुहम्मद की थी।''[2] इस प्रकार उन्होंने साम्प्रदायिक एकता की स्थापना का भी महत्वपूर्ण प्रयास किया।

उल्लेखनीय है कि निराला में भक्ति-भावना के जो तत्व मिलते हैं, उनके स्रोत निराला की शिक्षा, संस्कार और उनके परिवेश में देखे जा सकते हैं। उन्हें देवी-देवताओं में शक्ति के प्रतीक देवी-देवता अधिक आकर्षित करते हैं। इसका कारण है कि शक्ति की उपासना अवध प्रदेश तथा बंगाल में बड़ी निष्ठा से की जाती है और इन दोनों स्थानों में ही निराला के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। निराला ने अपनी अनेक रचनाओं में शक्ति की अवतारणा की है। इसी शक्ति के प्रतीक हैं दुर्गा और महावीर। शक्ति की अवतारणा की प्रेरणा उन्हें एक ओर अवध के संस्कार से और दूसरी ओर राम, कृष्ण और विवेकानंद से मिली।

1- डॉ० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य-साधना, भाग-2, पृ० 46

2- वही, पृ० 49

विदित है कि विवेकानंद ने वेदांत का सहारा लेकर भारत को हर प्रकार की गुलामी से मुक्त करने की आवाज उठायी थी। उनके इस कार्य को निराला ने आगे बढ़ाया। इस संदर्भ में चेलिशेव के कथन प्रासंगिक हैं। वे कहते हैं "भारत की पहले की महानता को पुनः स्थापित करने तथा लोगों के मन में राष्ट्रीय स्वाभिमान, मातृभूमि के प्रति निःस्वार्थ भक्ति, निडरता और साहस पैदा करने की विवेकानंद की उत्कट अभिलाषा ने सूर्यकांत को सबसे अधिक उनके विचारों की ओर आकृष्ट किया।"[1] एक बार उन्होंने कहा भी "जब मैं बोलता हूँ तब यह मत समझिये कि मैं बोल रहा हूँ। वास्तव में मेरी जबान से बोल रहे हैं स्वयं विवेकानंद।"[2]

वस्तुतः निराला के सम्पूर्ण चिंतन का आधार है भारत। अपनी श्रेष्ठ कविता 'राम की शक्तिपूजा' में उन्होंने शक्ति की जो मौलिक कल्पना की है उसका आधार भी भारत ही है। राम साम्राज्यवाद की जंजीर में जकड़े भारत के दुःखी जन के प्रतीक हैं, रावण साम्राज्यवाद का प्रतीक है और शक्ति उस विप्लव की प्रतीक है जिसके माध्यम से भारत को मुक्ति मिलेगी। निराला ने अपनी यथार्थवादी कहानी 'देवी' में शक्ति की कल्पना कुछ दूसरे ढंग से की है। यहाँ महाशक्ति उन्हें बंगाली विधवा में दिखाई पड़ती है। उन्होंने लिखा है -- "उसे देखकर मुझे बार-बार महाशक्ति की याद आने लगी। महाशक्ति का प्रत्यक्ष रूप संसार को इससे बढ़कर ज्ञान देने वाला और चैन पा होगा।"[3] वस्तुतः निराला यह समझते हैं कि अब वह समय नहीं रहा कि विधिवत् अनुष्ठान करके शक्ति का

1- ये०पे० चेलिशेव - सूर्यकांत त्रिपाठी निराला (अनूदित), पृ० 18 प्रथम संस्करण 1981

2- वही, पृ० 18

3- निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ० 42

आहूवान किया जाए — आज महाशक्ति पगली के रूप में सामने खड़ी है । अतः देश के नवोत्थान के लिए शक्तिपूजा तो करनी है लेकिन उस शक्ति की जो शोषित, पीड़ित और दुःखी जनता के अन्दर छिपी है । यह निराला की क्रांतिकारी सांस्कृतिक चेतना है । उनकी सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति 'भक्त और भगवान' शीर्षक कहानी में भी हुई है । हनुमान के भक्त को महावीर भारत के ही एक रूप दिखते हैं । ''. . . . .पंजाब की ओर मुँह, दाहिने हाथ में गदा —मौन-शक्ति- शास्त्र, बंगाल के ऊपर दाएँ-बाएँ पर हिमालय पर्वत की श्रेणी, बगल के नीचे बंगोपसागर, एक घुटना वीर-देश —सूचक —टूटकर गुजरात की ओर बढ़ा हुआ, एक पैर प्रलम्ब — अँगूठा — कुमारी — अंतरीप, नीचे राक्षस रूप — लंका - कमल - समुद्र पर खिला ।''[1]

अपनी भक्तिभावना की चर्चा करते हुए निराला ने 'स्वामी सारदानंद-जी महाराज और मैं' शीर्षक संस्मरण में लिखा है ''हमारे यहाँ की जैसी संस्कृति थी, मैं बचपन से संतों की सूक्तियों पर भक्ति करता हुआ विशेष रूप से वैरा-नुरक्त हो चला था । इसलिए सो जाने पर देवताओं के स्वप्न बहुत देखा करता था ।''[2] निराला की तरह ही 'अर्थ' कहानी में रामकुमार देवताओं के स्वप्न देखता है । उसे इस बात का विश्वास है कि राम उसकी समस्त बाधाओं, सारे कष्टों को दूर करेंगे । इसलिए वह अनेक बाधाओं को पार करता हुआ राम से मिलने चित्रकूट में कामद-गिरि पर्वत पर चढ़ता है । इस क्रम में उसे ईश्वर के अस्तित्व पर एक बार शंका होती है — ''क्या भगवान नहीं है ?''[3]

1- निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ0 79
2- वही, पृ0 54
3- निराला - लिली कहानी संग्रह, पृ0 78

तभी एक तोता उसकी शंका का समाधान करते हुए कहता है ''है, है''।[1] (ठीक वैसे ही जैसे उसने तुलसीदास को यह बतलाया था कि जिसे तुम चंदन लगा रहे हो वही राम है।) इस उत्तर के मिलते ही ''जैसे सारी पृथ्वी उसकी दृष्टि में घूमते-घूमते, धूमिल छाया में बदलते हुए सब आकाश में मिलने लगी। अंत में रामकुमार को कहीं कुछ न देख पड़ा। उसके देह है यह ज्ञान भी न रहा। शरीर निश्चल, आँखें निष्पलक रह गयीं।''[2] विदित है कि लगभग यही स्थिति विवेकानंद की तब हुई थी जब उन्होंने रामकृष्ण परमहंस के सामने ईश्वर की सत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाया था। यही स्थिति निराला की भी हुई थी जब उन्होंने स्वामी शारदानंद के सामने तंत्र-मंत्र पर अविश्वास प्रकट किया था। इस संबंध में निराला ने लिखा है ''मुझे ऐसा जान पड़ा, एक ठंडी नदि में मैं डूब रहा हूँ।''[3] उनकी इन आस्थाओं को देखकर कभी-कभी उनके पुनरुत्थानवादी होने का भ्रम होता है, लेकिन निराला रूढ़ अर्थों में पुनरुत्थानवादी नहीं हैं। वे भारतीय संस्कृति के उन्हीं पक्षों की हिमायत करते हैं जिनसे देश का कल्याण हो सकता है। देश के कल्याण की चिंता को ही केन्द्र में रखकर उन्होंने 'तुलसीदास', 'यमुना के प्रति', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'राम की शक्तिपूजा' जैसी कविताएँ लिखीं।

वस्तुतः निराला सांस्कृतिक परंपरा के कवि हैं। "भारत उनके लिए मुख्यतः सांस्कृतिक इकाई है। एक ऐसी सांस्कृतिक इकाई जिसे मिटाया नहीं जा सकता, जिसकी समता और तुलना नहीं की जा सकती। जो बावजूद अनेक बाधाओं के भी अडिग और अमिट है।''[4] भारत की संस्कृति को नष्ट करने की अनेक

1- निराला - लिली कहानी संग्रह, पृ0 78
2- वही, पृ0 78
3- निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ0 58
4- दूधनाथ सिंह - निराला आत्महंता आस्था, पृ0 [illegible]

चेष्टाएँ हुई हैं, कुछ हद तक भारत का सांस्कृतिक अधःपतन भी हुआ है। निराला इस सांस्कृतिक अधःपतन का विकल्प ढूंढते हैं। इस क्रम में वे भारत की उन सांस्कृतिक विशेषताओं को सामने लाते हैं, जिन पर हम गर्व कर सकते हैं। सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक अंधविश्वासों का पक्ष लेकर निराला अपनी सांस्कृतिक चेतना का परिचय नहीं देते हैं, बल्कि उन्होंने इन रूढ़ियों और अंधविश्वासों को तोड़ा है — उनका चित्रण कर वे अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का परिचय देते हैं।

चतुर्थ अध्याय

सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के स्वरूप

(क) व्यंग्य की प्रधानता

(ख) विद्रोही स्वर

(ग) औपन्यासिक शिल्प में परिवर्तन

(घ) कथानक-शिल्प में नवीनता

(ङ) भाषा

चतुर्थ अध्याय

(क) व्यंग्य की प्रखरता :

व्यंग्य साहित्यिक शैली पक्ष का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास ही व्यंग्य की शैली के साथ हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वयं व्यंग्य लेखन की कला में निपुण थे। 'अंधेर नगरी चौपट राजा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवती' आदि उनके व्यंग्य प्रधान नाटक हैं। उनके समकालीन गद्यकार प्रतापनारायण मिश्र भी अपने व्यंग्यात्मक लेखन के लिए प्रसिद्ध हैं। बालमुकुन्द गुप्त कृत 'शिवशम्भु के चिट्ठे' व्यंग्यात्मक लेखन का ही प्रमाण है। इस व्यंग्यात्मक शैली की परंपरा का विकास हिंदी साहित्य की गद्य और पद्य दोनों विधाओं में हुआ है। बीसवीं सदी में इस व्यंग्यात्मक शैली को निखारने और पुष्ट करने में निराला के लेखन का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में - ''निराला के व्यक्तित्व की एक विशेषता उनकी हास्य और व्यंग्य की प्रवृत्ति है। भावुक कवियों में यह प्रवृत्ति कम देखी जाती है। निराला के गद्य में पद्य में व्यंग्य की तीक्ष्णता, हास्य की उल्लास व्यंजना अन्य छायावादी कवियों से अधिक है।''[1] निराला ने काव्य एवं गद्य दोनों क्षेत्रों में व्यंग्यात्मक शैली का अवलम्बन लिया है। उनकी 'दान', 'झींगुर डटकर बोला', 'महगू महगा रहा' आदि कवितायें व्यंग्य शैली की ही प्रमाण हैं। 'कुकुरमुत्ता' में उनकी व्यंग्य शैली पूरे 'निखार' पर पहुँच गयी है। इसी तरह उनका निबंध

भाग २

1- डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य-साधना, पृ० 55।

संग्रह 'चाबुक' व्यंग्यात्मक तेवर से ओतप्रोत है । निराला की इस व्यंग्यात्मक भंगिमा से उनका कथा-साहित्य भी अछूता नहीं रहा है । यह कहना कदापि अतिरंजित न होगा कि निराला की इस व्यंग्य शैली का ही विकास काव्य-क्षेत्र में नागार्जुन द्वारा एवं गद्य में हरिशंकर परसाई जैसे रचनाकारों में हुआ है ।

व्यंग्य की सृष्टि साहित्य में दो आधारों पर होती है -एक आधार व्यक्तिगत होता है दूसरा सामाजिक । पहले में व्यंग्य का निशाना व्यक्ति बनता है दूसरे में समाज । निराला का व्यंग्य व्यक्ति पर न होकर समाज पर है । इनके व्यंग्य का कारण व्यक्तिगत राग-द्वेष नहीं है, बल्कि उन्होंने आम-जनता के एक प्रतिनिधि के रूप में ढोंगियों और पाखंडियों पर व्यंग्य किया है। उनका कहना है कि ''मेरे सामने कविता लिखते समय व्यक्ति कभी नहीं आता, मैं तो पूरे समाज को देखता हूँ ।''[1]

निराला ने अपनी रचनाओं में प्रारंभ से ही समाज के ढोंगियों और पाखंडियों पर व्यंग्य के तीक्ष्ण बाण चलाए । विदित है कि प्रथम विश्वयुद्ध के बाद देश में भयंकर महामारी फैली, जिसमें लाखों जानें गयीं । इस संकटपूर्ण स्थिति में ब्रिटिश शासकों और भारतीय जमींदारों के रवैये में परिवर्तन नहीं आया । शोषण का चक्र उन्होंने पूर्ववत् जारी रखा । उन पर व्यंग्य करते हुए 'अलका' उपन्यास में निराला ने लिखा है ''इसी समय सरकारी कर्मचारियों ने घोषणा की, सरकार ने जीत प्रकट की है, आनंद मनाओ, सब लोग अपने-अपने दरवाजों पर दिए जलाकर रखें ।.... पुलिस धूम-धूम कर देखने लगी, किस घर में शांति का चिह्न रोशनी नहीं ।''[2] इसी प्रकार भोग-विलास में लिप्त राजा-रजवाड़ों पर

1- गंगा प्रसाद पाण्डेय - महाप्राण निराला, पृ० 149

2- निराला - अलका, पृ० 10

व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा -''चरित्र में ये किसी तवायफ से श्रेष्ठ नहीं । पर फिर भी समाज इनका है, इसलिए ये अपराधी नहीं । नीचता से ओतप्रोत ऐसी वृत्तियाँ लिए हुए भी ये समाज के प्रतिष्ठित, सम्मान्य, विद्वान और बुद्धिमान मनुष्य हैं ।''[1] सुराज का अर्थ न जानने वाले किसानों पर जो अत्याचार ब्रिटिश शासकों के साथ मिलकर भारतीय जमींदारों ने किया निराला ने उसका चित्रण 'अलका' उपन्यास में किया है । प्रथम विश्वयुद्ध से उत्पन्न आर्थिक संकट की स्थिति में जो रवैया भारतीय पूँजीपतियों और जमींदारों का था, निराला ने उस पर करारा व्यंग्य किया । इसी प्रकार 'न्याय' शीर्षक कहानी में निराला ने देश की पुलिस व्यवस्था पर व्यंग्य किया है । कहानी का नायक एक घायल व्यक्ति की रक्षा करना चाहता है , लेकिन उस घायल व्यक्ति की तुरन्त ही मृत्यु हो जाती है, बाद में पुलिस उसी को अपराधी समझकर उसे हवालात में बन्द कर देती है । 'देवी' शीर्षक कहानी में उन्होंने राजनेताओं पर व्यंग्य किया और इस तथ्य को सामने लाया कि अपने सत्ता के मद में इन नेताओं को किसी की जान की परवाह नहीं होती । नेता के जुलूस में पगली का बच्चा कुचल गया । ''नेता दस हजार की थैली लेकर गरीबों के उपकार के लिए चले गये । जल्दी-जल्दी कामों में खर्च करेंगे ।''[2] इन्हीं नेताओं की पोल खोलते हुए उन्होंने 'अलका' में लिखा -''. . . लोगों को समृद्ध करने के उपाय छोड़कर स्वयं प्रसिद्ध होने को तत्पर हैं । इस तरह जिस समूह को वे स्वतंत्र करना चाहते हैं, उसे ही अपनी आज्ञाओं का अनुवर्ती, गुलाम करने के फेर में पड़ जाते हैं ।''[3] इसी कहानी में उन्होंने अपनी पत्नी

1- निराला - अप्सरा, पृ0 113-114
2- निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ0 45
3- निराला - अलका, पृ0 30

की सच्चरित्रता का पाठ सिखाने वाले दुश्चरित्र महानुभावों पर भी व्यंग्य किया है । उल्लेखनीय है कि व्यंग्य बाण के प्रहार से निराला अपने आपको भी आहत करते हैं । 'देवी' कहानी में वे कहते हैं ''बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा ।''[1] इस कथन में जितना दुख, जितनी पीड़ा है, उतना ही व्यंग्य भी है । पीड़ा है अपनी असफलता के कारण और व्यंग्य उस समाज-व्यवस्था पर है जो व्यक्ति के विकास में रोड़े अटकाता है । निराला का व्यंग्य इहलोक पर ही नहीं, परलोक पर भी है । जैसा भेद-भाव धरती पर है वैसा ही ऊपर भी है-''चंद्र, सूर्य, वरुण, कुबेर, यम, जयन्त, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक बाकायदा , बाहिसाब ईश्वर के यहाँ भी छोटे-से-बड़े तक मेल मिला हुआ है ।''[2] इसी कहानी में उन्होंने वर्ण-व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए लिखा -''राम- श्याम जो-जो हैं पुजने-पुजाने वाले, सब बड़े आदमी हैं । ..... बिना राजा हुए राजर्षि होने की गुन्जाइश नहीं, न ब्राह्मण हुए बगैर ब्रह्मर्षि होने की है । वैश्यर्षि या शूद्रर्षि कोई था, इतिहास नहीं, शास्त्रों से भी प्रमाण नहीं, अर्थात् नहीं हो सकता ।''[3] यह वर्ण-व्यवस्था निराला की चेतना को झकझोरती है ।'श्रीमती गजानंद शास्त्रिणी' नाम की कहानी में उन्होंने हिन्दू धर्म पर व्यंग्य किया है ।श्रीमान् गजानंद शास्त्री अपनी चौथी पत्नी से उम्र में लगभग तीन गुने बड़े हैं । धर्म का सहारा लेकर बड़े-बड़े अनर्थ किये जाते रहे हैं, शास्त्री जी ने भी धर्म की रक्षा के लिए ही चौथी शादी की। निराला ने धर्म के रक्षकों पर व्यंग्य करते हुए लिखा -''श्रीमान् शास्त्री जी ने

1-निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह,पृ0 38 (संस्करण, 1976)

2- वही, पृ0 39

3- वही,पृ0 39

..... यह चौथी शादी की है धर्म की रक्षा के लिए । शास्त्रिणी जी के पिता को षोडषी कन्या के लिए पैंतालिस साल का वर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए ।''[1] धर्म की रक्षा के लिए ऐसे और न जाने कितने अत्याचार होते हैं । धर्म की रक्षा के लिए अयोध्या के पंडों ने कुल्ली की मुसलमान पत्नी को दी हुई कंठीमाला वापस ले ली । ऐसे ही धर्मांधों पर व्यंग्य करते हुए कुल्ली कहते हैं -''जब आप शुद्ध की हुई मुसलमानिन को नहीं ग्रहण कर सकते, तब आप गुरु नहीं ढोंगी हैं, आपने व्यापार खोल रखा है ।''[2] इसी उपन्यास में निराला ने बड़े-बड़े राजनेताओं पर भी व्यंग्य किया है । कुल्ली सच्चे समाज-सेवक हैं । वे धूमधाम का कांग्रेस का प्रचार करते हैं, स्वयं-सेवक बनाते हैं, लेकिन अछूत पाठशाला चलाने के लिए कई बार चिट्ठी लिखने पर भी नेताओं से उन्हें आर्थिक मदद नहीं मिलती । कुल्ली के सामने उन्हें अपना व्यक्तित्व तुच्छ प्रतीत होता है । अपने कवि-कर्म पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं -''मैं ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलास का कवि हूँ । - फिर क्रांतिकारी । ।''[3] ज्योतिर्मयी' कहानी में ज्योतिर्मयी समाज के ठेकेदारों पर व्यंग्य करती हुई कहती है -''पहले ब्याही स्त्री इसी तरह स्वर्ग में अपने पूज्य-पाद पति-देवता की प्रतीक्षा करती हो, और पतिदेव क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नियों को मार-मारकर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहें, तो वृद्ध मर कर किसके पास पहुँचेंगे ।''[4]

यों तो निराला ने व्यंग्य को अपनी रचनाओं में शुरू से ही अपनाया लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका ने निराला के व्यंग्य को और पैना बना

1- निराला - सुकुल की बीवी कहानी संग्रह, पृ0 37 (चतुर्थ संस्करण)
2- निराला - कुल्ली भाट, पृ0 73 (3) वही, पृ0 70
4- निराला - लिली कहानी संग्रह, पृ0 23

दिया । इस संदर्भ में गंगा प्रसाद पाण्डेय का कहना है –"द्वितीय विश्वयुद्ध काल से निराला ने व्यंग्य को अधिक अपनाया क्योंकि अपने को सभ्य और शिक्षित कहने वाले मानव की क्रूर हिंसात्मक वृत्तियों और युद्ध-प्रवृत्तियों पर कुठाराघात करने के लिए एक साहित्यकार के पास व्यंग्य की धार के अतिरिक्त और साधन भी क्या शेष रह जाता है ।"[1] द्वितीय विश्वयुद्ध से व्यंग्य को अपनाने का एक प्रमुख कारण यह था कि इस विश्वयुद्ध के बाद उनकी सामाजिक चेतना प्रखरतर होती चली गयी । उन्होंने समाज की सड़ी-गली मान्यताओं, पोंगा पंडितों और भारतीय राजनीति के रहनुमाओं पर करारे व्यंग्य किये । उनका एक-एक व्यंग्य उनकी ज्वलंत सामाजिक चेतना का प्रमाण है । विश्वसाहित्य का इतिहास बतलाता है कि समय-समय पर विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों ने साहित्येतिहास में ऐसे प्रतिभासम्पन्न लेखकों का जन्म हुआ है, जिन्होंने समाज में प्रचलित अंध-विश्वासों, रूढ़ियों और सुविधाभोगी वर्ग की नीतियों पर व्यंग्य करके उनके पाखंडी रूप का पर्दाफाश किया है । स्विफ्ट और बर्टेयर के व्यंग्य विश्वप्रसिद्ध हैं । इन व्यंग्यों के कारण समाज के व्यवसायी ठेकेदारों और पंडितों, मुल्लाओं और नेताओं से निराला को वही सब सुनना पड़ा जो किसी समय स्विफ्ट और बर्टेयर को सुनना पड़ा ।

निराला ने समाज में प्रचलित कुरीतियों, भ्रमपूर्ण धारणाओं पर व्यंग्य की धार करके जनता को वस्तुस्थिति से परिचित कराया । किसी पर ऐसा व्यंग्य वही रचनाकार कर सकता है जिसके अन्दर मानवमात्र के लिए सच्चा प्रेम हो । निराला ने अपने युग की रूढ़ियों, मानवता के नाम पर होने वाले अत्याचारों

1- गंगाप्रसाद पाण्डेय –महाप्राण निराला, पृ० 117 (द्वितीय संस्करण)

और सामाजिक रूढ़ियों को स्वयं अनुभव किया था, इसलिए उनके व्यंग्य उनके हृदय की आवाज बन गये । उन्होंने अपने व्यंग्य से देश की सोई हुई मानवता को जगाने का प्रशंसनीय कार्य किया । रूढ़ियों से ग्रस्त भारतीय समाज के कुहराच्छन्न वातावरण को भेदने के लिए निराला ने जिन व्यंग्य वाणों का आश्रय लिया उनका सामाजिक एवं ऐतिहासिक महत्व असंदिग्ध है ।

(ख) विद्रोही स्वर :

हिन्दी भाषा और साहित्य का यह सौभाग्य रहा है कि उसने अपने जन्म-काल से ही सामाजिक मान्यताओं और रूढ़ियों से लोहा लिया है । समाज में जब मिथ्याचार बढ़ जाता है, सत्य का गला घोंटा जाने लगता है, ढोंग, पाखंड और धूर्तता की समाज में पूजा होने लगती है, तब ऐसी स्थिति में किसी सजग रचनाकार का व्यंग्यात्मक और विद्रोही हो जाना स्वाभाविक है । वस्तुतः निराला जैसे व्यक्ति के लिए सामाजिक मान्यताओं में जकड़ा रहना असंभव था, इसलिए उन्होंने जर्जर सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह किया । विदित है कि जो रचनाकार जितना ही सजग होता है विद्रोह का गुण उसमें उतना ही अधिक होता है । यहाँ हम कबीर और निर्गुणिया संतों को देख सकते हैं । कबीर की सामाजिक चेतना प्रखर थी इसलिए उन्होंने जर्जर सामाजिक मान्यताओं के साथ समझौता नहीं किया । भक्तिकाल में जिस तरह कबीर और विद्रोह एक-दूसरे के पर्याय बन गये थे उसी प्रकार छायावादी दौर में निराला और विद्रोह । वस्तुतः यह उतना सही है कि निराला विद्रोह के कवि हैं । यह विद्रोह जितना उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुआ है, उतना ही उनके गद्य-साहित्य में । इस विद्रोह के कई रूप हैं — सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और साहित्यिक ।

निराला ने लोकरीति, कुलरीति और जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं के प्रति विद्रोह किया। समाज की गलित मान्यताओं को तिलांजलि देकर वे कुल्लीभाट की मुसलमान पत्नी के घर दफ्नशाह में शीश नवाने जाते हैं। अपनी सास के मना करने पर निराला का विद्रोही स्वर फूट पड़ता है। वे कहते हैं — "मैं आपका ससुर हूँ या अजिया ससुर ? मेरे पापों का फल आपको क्यों भुगतना पड़ेगा। मेरा दिया हुआ पिण्ड-पानी क्याकि आपको नहीं मिल सकता ? आप मुझे चौके में न खिलाइये बस।"[1] निराला की तरह ही कुल्लीभाट भी सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करते हैं। कुल्ली सारे समाज का विद्रोह सहकर एक मुसलमान स्त्री से शादी करते हैं। रूढ़ी सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ विद्रोह 'अलि कारनामे' में मनोहर करता है। वह काशी में अछूतों के घर लाग-पूड़ी खाता है। (इसी प्रकार चतुरी चमार के बेटे को पढ़ाना और उससे गोश्त मँगाकर खाना सामाजिक मान्यताओं के मुँह पर तमाचा मारना है, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच खाईं पैदा करती हैं)। 'बिल्लेसुर बकरिहा' में निराला का विद्रोही तेवर पूरे वेग के साथ प्रकट हुआ है। बिल्लेसुर का (जो जाति के ब्राह्मण हैं) बकरी चराना उस संस्कृति के खिलाफ विद्रोह है जो द्विज को श्रेष्ठ और शूद्र को निम्न समझता है। 'चमेली' उपन्यास में अछूत महादेव के द्वारा ठाकुर बख्तावर सिंह की पिटाई, 'निरुपमा' में लन्दन से डी०लिट्० की उपाधि लेकर लौटे कुमार का मोची का काम करना इसी वर्ण-व्यवस्था के प्रति विद्रोह है।

निराला ने अपने कथा-साहित्य में क्रांतिकारी युवतियों की अवतारणा की है। इसके पीछे निराला की विद्रोही चेतना ही काम कर रही थी। वे उस

1- निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ० 93

सामंती मान्यता के कट्टर विरोधी थे जो नारी को भोग्या के सिवा और कुछ मानने को तैयार नहीं था। इसलिए उन्होंने तमाम चेहरे पर स्याही मली हुई पगली भिखारिन में वह रूप देखा जो महाशक्ति का है, प्रेरणा का है। उन्होंने लिखा ''वह साँवली थी, दुनिया की आँखों को लुभाने वाला उसमें कुछ न था, दूसरे लोग उसकी स्याही की ओर रुख न कर सकते थे, पर मेरी आँखों को उसमें वह रूप देख पड़ा, जिसे मैं कल्पना में लाकर साहित्य लिखता हूँ, केवल वह रूप ही नहीं, भाव भी।''[1] उन्होंने स्त्रियों में छिपी हुई उस प्रतिभा को पहचाना जो समाज के विकास के लिए आवश्यक है। अपने उपन्यासों 'अलका', 'प्रभावती', 'निरुपमा' तथा 'काले कारनामे' में उन्होंने ऐसी युवतियों का चित्रण किया है जो पर्दे से बाहर निकल कर देश और समाज के लिए काम करती हैं।

निराला के नारी-विषयक विचार पुरानी जर्जर मान्यताओं के प्रति विद्रोह का भाव लिये हुए हैं। इसलिए उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया, लेकिन विधवाओं की समस्या का समाधान वे सिर्फ उनके विवाह में नहीं देखते, विधवाओं की समस्या का हल तभी संभव है जब उन्हें भी अपने व्यक्तित्व के विकास के अवसर मिलेंगे, स्वतंत्रता मिलेगी। विधवा को निराला ने 'इष्ट-देव के मंदिर की पूजा-सी पवित्र कहा है, उसने अपने मधु-सुहाग दर्पण में देखा—

बस एक बार प्रतिबिम्बित अपना जीवन धन'।

समय
पति के साथ कुछ बिताकर विधवा होने वाली स्त्री को 'इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी पवित्र कहना उस सामाजिक मान्यता के प्रति विद्रोह है, जिसमें विधवा को

1- निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ0 4।

समाज की मुख्य धारा से काट रखा था ।

निराला ने उन धार्मिक कुरीतियों और अंधविश्वासों के प्रति भी विद्रोह किया जो व्यक्ति को कर्म से विमुख कर उसे निष्क्रियता और भाग्यवाद की ओर ले जाते हैं । बिल्लेसुर का मछवीर की मूर्ति पर प्रहार वस्तुतः उन धार्मिक अंधविश्वासों पर प्रहार है जो व्यक्ति को श्रम के प्रति आस्था से अलग करते हैं । ध्यातव्य है कि निराला ने इस प्रकार का विद्रोही स्वर उस समय उठाया जब समाज में कर्मकांड, कूपमंडूकता और अंधविश्वासों का बोलबाला था ।

निराला ने ब्रिटिश सरकार की उन आर्थिक नीतियों का कड़ा विरोध किया, जिसके कारण जी-तोड़ मेहनत करने के बाद भी भारतीय किसान को दो वक्त की रोटी मयस्सर नहीं होती थी । एक तो अनाज की पैदावार कम होती थी, उस पर लगान देना अनिवार्य था । रही सही कसर अकाल, भूचाल जैसी प्राकृतिक विपदाएँ और महायुद्ध ने पूरा कर दिया । महायुद्ध के दौरान गहरे आर्थिक संकट के दिनों में भुखमरी के सबसे ज्यादा शिकार किसान ही हुआ करते थे । निराला ने बहुत अच्छी तरह इस बात को जाना कि ब्रिटिश सरकार ने भारत को गुलाम ही इसलिए बनाया है कि वे भारत का आर्थिक शोषण कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आधार को मजबूत करते रहें । उन्होंने ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों को उसके साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का अभिन्न अंग के रूप में देखा । ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों के विरोध के साथ ही उन्होंने कांग्रेस की समझौतावादी – सुधारवादी नीति का भी विरोध किया । कांग्रेसी नेता जिस तरह स्वाधीनता आंदोलन का संचालन कर रहे थे, और जिस तरह सौदेबाजी करके अंग्रेजों से स्वाधीनता हासिल करना चाह रहे थे निराला उसके विरोधी थे । उन्होंने

'अलका' उपन्यास में कांग्रेस की इसी नीति का विरोध करते हुए लिखा —''कांग्रेस का हाल पूछो मत । यहाँ जो महाशय त्रिवेणी प्रसाद हैं वह दोनों तरफ रंगते हैं, ऐसे जीव हैं ।''[1] कांग्रेसी कार्यकर्ता यद्यपि देश को आजाद करने का नारा लगाते थे, लेकिन यूरोप का आकर्षण भी उन्हें बांधे हुए था। ऐसे ही कार्यकर्ताओं की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा —''कार्यकर्ता जो कुछ भी प्रभात के विकल तारों से देख पड़ते हैं, योरप के मरुस्थल की ओर बढ़ रहे हैं, और उद्देश्य जल का लिए हुए, पर नहीं समझते, एक-दूसरे की प्राकृत ज्वाला से जला हुआ प्रकृति की नकल है ।''[2]

देश की वर्तमान स्थिति ऐसी है जो प्रतिदिन हजारों औरतों को पगली की स्थिति में पहुँचा देती है । पगली "देश की सहानुभूति का कितना अंश पाती है — हमारी थाली की बची रोटियाँ, जो कल तक कुत्तों को दी जाती थीं । वही, यही हमारी सच्ची दशा का चित्र है ।''[3] पगली का जीवन समाज के ठेकेदारों, राजनीतिज्ञों, नेताओं के साथ-साथ साहित्य और कला के उन महारथियों के प्रति भी विद्रोह है जो समाज की शक्ति — दीन, दुर्बल, शोषित और उपेक्षित जनों को भुला देते हैं ।

आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक आदि मान्यताओं के प्रति विद्रोह करने के साथ ही निराला ने साहित्य की अशक्त प्रवृत्तियों के प्रति भी विद्रोह किया । छायावाद के एक प्रतिनिधि कवि होते हुए भी उन्होंने उसकी मसृणता, अतिमधुरता, भाव-क्षेत्र की संकीर्णता आदि का विरोध किया । उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति के लिए

1- निराला - अलका, पृ० 39

2- वही, पृ० 30

3- निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ० 42

मुक्त छंद का सहारा लिया । निराला ने कविता की मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति से जोड़कर देखा ।'परिमल'की भूमिका में उन्होंने लिखा—''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है ।''[1]

जैसा कि गंगाप्रसाद पाण्डेय का कहना है —''निराला का विद्रोह मानवता की जड़ और विषम परिस्थितियों और जीवन के रूढ़िग्रस्त निर्जीव संस्कारों के प्रति सदा सचेत रहा । वास्तविकता जो है, उससे विद्रोह करके जो होना चाहिए के प्रति आकर्षण और उसके आकलन की निरन्तर साधना ही उनके विद्रोह की मूल प्रेरणा थी । यही कारण है कि उनके विद्रोह में सहज सामूहिक कल्याण के संकल्प से प्रस्फुटित शक्ति, ओज और उद्दाम पौरुष का अबाध आवेग पाया जाता है । उन्होंने अपने समय की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक सभी क्षेत्रों की गलित मान्यताओं, पद्धतियों एवं निर्जीव, मृत, दृढ़ संस्कारों के प्रति विद्रोह किया और उन्हें सुधारने की ओर अपने जीवन और सृजन से उस दिशा का निर्देश भी किया, जिसे वे विकासशील और वांछनीय समझते थे ।''[2] वस्तुतः एक रचनाकार के पास जीर्ण-शीर्ण संस्कारों, अंधविश्वासों और कुरीतियों को मिटाने का एकमात्र अस्त्र व्यंग्य और विद्रोह है । निराला ने अपने व्यंग्य और विद्रोह के द्वारा जनजीवन को नवजागरण का संदेश दिया ।उनके व्यंग्य - विद्रोह प्रयास के परिणाम नहीं हैं, बल्कि वे स्वतःस्फूर्त और परिस्थिति-जन्य हैं ।

1- निराला - परिमल (भूमिका से),पृ0 8 (संस्करण दिसम्बर, 1978)

2- गंगा प्रसाद पाण्डेय - महाप्राण निराला,पृ0 432

(ग) औपन्यासिक शिल्प में परिवर्तन :

साहित्य में रूप-विधान या शिल्प-पक्ष और अंतर्वस्तु के पारस्परिक संबंध को लेकर काफी बहस हुई है। कुछ विचारकों के अनुसार साहित्यिक कृति की अन्तर्वस्तु और उसके शिल्प-पक्ष में कार्य-कारण संबंध होता है। जिस तरह की विषय वस्तु होती है उसी के अनुरूप उसका शिल्प भी निर्मित होता है। अगर विषय वस्तु भाववादी है तो उसका रूप-पक्ष भी भाववादी होगा और अगर उसकी विषय-वस्तु यथार्थवादी है तो उसका शिल्प भी यथार्थवादी होगा। इस मान्यता के अनुसार रचनाकार अपनी जीवन-दृष्टि की संगति में परंपरागत शिल्प-विधान को परिवर्तित करता है। उदाहरण के तौर पर छायावादी काव्य को देखा जा सकता है। छायावादी कवियों ने अपने वैयक्तिक भावावेग, सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विरोधी स्वर, मानव-मुक्ति की आकांक्षा जैसी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति के लिए परंपरा से प्राप्त काव्य के रूप-विधान को अपने ढंग से संवारा। लेकिन यह मान्यता अंशतः सही है। कभी-कभी अन्तर्वस्तु और शिल्प-पक्ष में संगति होती भी है और नहीं भी होती है। इनमें कार्य-कारण का संबंध नहीं माना जा सकता। आवश्यक नहीं है कि रचनाकार की जैसी जीवन-दृष्टि हो वैसा ही उसका शिल्प-पक्ष भी हो। इस संबंध में मुक्तिबोध के कथन उल्लेखनीय हैं। उन्होंने 'कामायनी एक पुनर्विचार' में लिखा है -''यह बहुत ही संभव है कि यथार्थवादी शिल्प के विपरीत जो भाववादी शिल्प है - उस शिल्प के अन्तर्गत जीवन को समझने की दृष्टि यथार्थवादी रही हो।''[1] कहने का तात्पर्य यह कि भाववादी शिल्प के अन्तर्गत भी यथार्थवादी जीवन-दृष्टि हो सकती है और यथार्थवादी

1- नेमिचन्द्र जैन (सम्पा0)- मुक्तिबोध रचनावली, भाग-4, पृ0 219 (प्रथम संस्करण)

शिल्प के अन्तर्गत भाववादी जीवन-दृष्टि । मसलन प्रेमचंद की 'पंच-परमेश्वर', 'नमक का दरोगा' जैसी कहानियों में शिल्प तो यथार्थवादी ढंग का है पर मानव व्यवहारों को समझने की दृष्टि भाववादी है । इसी प्रकार मुक्तिबोध स्वयं जनवादी रचनाकार रहे हैं लेकिन उनका शिल्प वैसी प्रधान है जो एक प्रकार से भाववादी शिल्प ही है । प्रसाद की 'कामायनी' का शिल्प तो भाववादी है लेकिन कथावस्तु यथार्थवादी है । कहने का मतलब यह है कि विषय-वस्तु और शिल्प-पक्ष में कभी तो अनुकूल संबंध होता है और कभी प्रतिकूल । प्रेमचंद की 'कफन' और 'पूस की रात' कहानियाँ, प्रसाद के 'तितली' और 'कंकाल' उपन्यासों में जीवन-दृष्टि और शिल्प दोनों ही यथार्थवादी हो जाते हैं । इसी परिप्रेक्ष्य में हमें निराला के कथा-साहित्य के शिल्प-पक्ष का अवलोकन करना है । हमें यह देखना है कि उन्होंने परंपरागत शिल्प-तंत्र का कहाँ तक निर्वाह किया एवं अपनी जीवन-दृष्टि के दबाव के कारण उसे कहाँ तक रूपांतरित किया है ।

विदित है कि हिंदी उपन्यास लेखन भारतेन्दु युग में शुरू हुआ । उस समय उपन्यास का कोई प्रतिमानित रूप निर्धारित नहीं हो सका था । रचनाकार कथावस्तु और शिल्प की दृष्टि से नये-नये प्रयोग कर रहे थे । हिन्दी उपन्यास की उस प्रारंभिक अवस्था में रचनाकारों का ध्यान मुख्य रूप से नीति-शिक्षा, धार्मिक-शिक्षा, मनोरंजन-वृत्ति तथा मनोरंजन की सामग्री जुटाने की ओर अधिक था । जहाँ तक उपन्यासों की कथावस्तु का संबंध है वह भी अप्राकृतिक, अतिमानवीय, चमत्कार, कल्पना आदि से संबंधित थी । कहीं-कहीं सामाजिक उपन्यास भी लिखे जाते थे । लेकिन उपन्यास का समाज के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित नहीं हो पाया था । इसलिए मानव जीवन से प्राप्त पोषक तत्व के अभाव में अपनी प्रारंभिक

अवस्था में उपन्यास – शिल्प अनगढ़ और प्रयोगात्मक अवस्था में था ।

हिंदी उपन्यास-शिल्प का उत्कृष्ट रूप हिंदी उपन्यास जगत में प्रेमचंद के पदार्पण के बाद स्पष्ट होने लगा । प्रेमचंद ने उपन्यास को मनोरंजन और तिलस्म की दुनिया से निकालकर जीवन के सामने ला खड़ा किया । तात्पर्य है कि प्रेमचंद यथार्थवादी परंपरा के कर्णधार हैं । उनके कथा-साहित्य में वे समस्त शिल्प-गत प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं, जिनके ढांचे में लगभग हिंदी के सभी श्रेष्ठ कथाकारों ने उपन्यास और कहानियों की रचना की । उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद के सामने प्रथम समस्या उपन्यास-शिल्प को सजाने-संवारने की नहीं थी, उनकी मुख्य चिंता के विषय थे-भारतीय जनता और किसान । यही कारण है कि प्रेमचंद के प्रायः सभी उपन्यासों में भारतीय किसान बार-बार आये हैं और प्रेमचंद की क्यों उनके समकालीन प्रसाद, जो रोमैंटिक कवि हैं अपने उपन्यास की कथावस्तु भारतीय ग्रामीण जीवन से लेते हैं । इस संदर्भ में डा0 नामवर सिंह का यह कथन उल्लेखनीय है –"..... भारत में उपन्यास का उदय और विकास (जो सच्चा, सार्थक, सर्जनात्मक उपन्यास है) दरअसल हमारे मुक्ति संग्राम की उपज है, जिसकी व्यापक भूमिका में किसान है । शायद ही हमारा कोई सार्थक उपन्यास हो जो कहीं-न-कहीं उस जन-साधारण, जो किसान या गांव में फैली हुई जनता के जन-संघर्षों को चित्रित न करता हो और यह कहते हुए मैं ध्यान में अकेले प्रेमचंद के उपन्यास नहीं हैं । प्रेमचंद के उपन्यास भी उसमें हैं । विचित्र बात है कि प्रसाद जैसा आदमी जो रोमैंटिक कवि है, जब उपन्यास लिखने चलता है तो 'कंकाल' और 'तितली' लिखते हुए उसको व्यापक ग्रामीण जीवन में जाना पड़ता है और यह आकस्मिक नहीं कि इसी परंपरा में नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु और बाद में

चलकर अन्य उपन्यासकार हुए ।"[1] प्रेमचंद युगीन रचनाकारों में भारतीय ग्रामीण जनता और उनके संघर्षों को अपने उपन्यास की कथावस्तु बनाया । शिल्प के प्रति शायद ये रचनाकार उतने सजग नहीं थे । चूंकि इन्होंने उपन्यास को जीवन संघर्ष का प्रवक्ता बनाया था इसलिए औपन्यासिक शिल्प खुद-ब-खुद संवरता चला गया । उनकी भाषा, संवाद, चरित्र-चित्रण — औपन्यासिक शिल्प के ये सभी पक्ष विषय-वस्तु के अनुसार स्वयं अपना प्रभावशाली स्वरूप ग्रहण करते गये ।

प्रेमचंद की इस यथार्थवादी परंपरा के ही उपन्यासकार निराला हैं । वैसे तो निराला ने उपन्यास 1931 से पहले से लिखना शुरू किया, लेकिन उनके जो श्रेष्ठ उपन्यास हैं वे सन् 1936 के बाद — प्रेमचंद की मृत्यु के बाद लिखे गये । प्रेमचंद की मृत्यु के बाद निराला ने अपने दायित्व को समझा और उन्होंने प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने का गुरूत्तर भार उठाया । इस संदर्भ में डा० नामवर सिंह का कहना है —" निराला के कलात्मक गद्य में प्रेमचंद की परंपरा का विकास हुआ है, विशेषतः मानवतावाद के रूप में ।"[2]

उल्लेखनीय है कि निराला के लगभग सभी उपन्यासों की कथावस्तु का संबंध ग्रामीण जीवन और स्वाधीनता आन्दोलन से है । उपन्यासकार के रूप में निराला के पास महिषादल, कलकत्ता, गढ़ाकोला, डलमऊ और लखनऊ के अनुभव थे । इन्हीं को आधार बनाकर उन्होंने उपन्यास लिखे । सन् 36 के पहले के उनके चारों उपन्यासों — 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती' और 'निरुपमा' का कथानक भावना-प्रधान है । इसलिए उसका शिल्पपक्ष भी भाववादी हो गया है ।

1- डा० नामवर सिंह - 'पूर्वग्रह' (अंक-46-47, सितम्बर-दिसम्बर, 1981), भोपाल

2- ये० पे० चेलिशेव - सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की भूमिका से, प्रथम संस्करण

इन उपन्यासों में निराला की प्रवृत्ति एक रोचक प्रेम-कथा गढ़ने की ओर अधिक रहती है। उनकी यथार्थवादी प्रवृत्ति जैसे ही ग्रामीण जनता के सुख-दुःख को चित्रित करने को होती है वैसे ही भाववादी प्रवृत्ति उस पर हावी हो जाती है। बार-बार उनका कवि हृदय काल्पनिक इच्छापूर्ति के सपने रचने की ओर प्रवृत्त हो जाता है। इन उपन्यासों में छायालोक कुछ अधिक गहरा हो गया है, इसके साथ ही ये उपन्यास घटना-प्रधान हैं।

जहाँ तक चरित्र-चित्रण का सवाल है — उपन्यास के पात्रों को भी उन्होंने दो वर्गों से लिया है। एक वर्ग जीवन की कठिनाइयों से मुक्त ऐशो-आराम में जीने वाला है। दूसरा वर्ग भारत की आम जनता है, जिसके अंदर मुक्ति की छटपटाहट है। लेकिन उपन्यासों में ये आम जनता के दुःख-दर्दों को पूरी तरह चित्रित नहीं कर पाते। यह उनके पहले चरण के उपन्यासों की कमजोरी है। सिर्फ 'अलका' उपन्यास में भारत की आम जनता — किसानों की मुक्ति की छटपटाहट है। 'अप्सरा' में कनक — राजकुमार प्रसंग, क्रांतिकारी चंदन के प्रसंग की अपेक्षा अधिक विस्तार पाता है। इसी प्रकार 'प्रभावती' में राजसी वैभव के चित्रण की तरफ ही निराला का ध्यान अधिक रहता है, क्रांतिकारी यमुना की ओर अपेक्षाकृत कम। 'अलका' और 'निरुपमा' में कथा की नायिकाओं क्रमशः अलका और निरुपमा के प्रसंग अधिक हैं, भुवन लोध और कुमार के जीवन का कम। ''इन उपन्यासों में अद्भुत दिवास्वप्न देखने वाला एक युवक है जो बहुत रोमैंटिक है और इच्छापूर्ति की कल्पनाओं से भरा हुआ नायक दिखाई पड़ता है।''[1]

सन् 36 के बाद के उनके चारों उपन्यास —'कुल्लीभाट','बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' में उनका विक्षुब्ध हृदय

1- डा० नामवर सिंह - 'पूर्वग्रह' (अंक-46-47)

सस्ता काल्पनिकता के मोहजाल से निकलकर, जीता-जागता जीवंत यथार्थ का चित्रण करने की ओर प्रवृत्त हो जाता है। इन लघु उपन्यासों के पीछे काम करने वाली निराला की जीवन-दृष्टि भी यथार्थवादी है और उसके शिल्प-पक्ष भी यथार्थवादी है। यद्यपि 'चोटी की पकड़' के कथासूत्र उलझे रहने के कारण उसमें स्वदेशी आंदोलन की कथा को कम स्थान मिला है, लेकिन उसके शिल्प में पहले के सारे उपन्यासों की तुलना में कसावट है। शिल्प और कथ्य की दृष्टि से उनके दो लघु उपन्यास 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' का हिंदी कथा-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। ''इन लघु उपन्यासों में वे अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों में दिखाई पड़ने वाले कल्पना और यथार्थ के अन्तर्विरोध को हल कर यथार्थ की भूमि पर आ गये हैं और उस पर अपनी विलक्षण सृजनशीलता का परिचय दिया है।...... इन उपन्यासों में उन्होंने प्रचलित रुचि से किसी तरह का समझौता नहीं किया और ये शुद्ध यथार्थवादी उपन्यास हैं, इनमें कल्पनाप्रसूत चमत्कार नहीं है।''[1]

'कुल्लीभाट' एक संस्मरणात्मक लघु उपन्यास है, "लेकिन इसमें आत्मकथा, जीवन-चरित्र, संस्मरण, रेखाचित्र आदि कई विधाएं मिल गई हैं।''[2] इसी प्रकार 'बिल्लेसुर बकरिहा' रेखाचित्रात्मक उपन्यास है। निराला ने इन दोनों लघु-उपन्यासों के चरित्र अवध के कस्बाई और ग्रामीण इलाकों से लिए हैं। उनके चरित्रों को उन्होंने बड़े ही कलात्मक रूप में उभारा है। इन यथार्थवादी लघु उपन्यासों का कथा-शिल्प उनके रोमैंटिक उपन्यासों के कथा-शिल्प से बहुत अलग है। रोमैंटिक उपन्यासों में निराला की नजर मुख्य रूप से घटना पर रहती है। उनमें कथानक

1- नंदकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग-4 (भूमिका से), संस्करण, 1983
2- डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य-साधना, भाग-2, पृ० 476

का क्रमिक विकास हुआ है। इसके विपरीत 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' में निराला की दृष्टि चरित्र-चित्रण पर अधिक रहती है, घटना के वर्णन और कथानक के विकास पर कम। फिर भी इनमें कथा-प्रवाह अबाधित तथा सुसम्बद्ध है।

रेखाचित्र किसी घटना पर आधारित नहीं होता। वह व्यक्ति पर आधारित होता है। इसमें व्यक्ति की रूप-रेखा, चाल-ढाल, वेश-भूषा तथा उसके गुण-अवगुण आदि का चित्रण होता है। इसमें शैली तथा अभिव्यंजना का महत्व होता है कथा या घटना का नहीं।

'कुल्लीभाट' में निराला ने कुल्ली की रूप-रेखा और वेश-भूषा का चित्रण इस प्रकार किया है — ''गेट पर टिकट-कलेक्टर के पास एक आदमी खड़ा था, बना चुना, बिल्कुल लखनऊ-ठाठ, जिसे बंगाली देखते ही गुंडा कहेगा। तेल से चुपड़े बाल, जैसे अमीनाबाद से सिर पर मालिश कराकर आया है। लखनऊ की दुपलिया टोपी, गोट तेल से गीली, सिर के दाहिने किनारे रखी। ऐंठी मूँछ। दाढ़ी चिकनी, चिकन का कुर्ता। ऊपर वास्कट। हाथ में बेंत। काली मखमली किनारी की कलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फैशन से पहनी हुई। पैरों में मेरठी जूते। उम्र पच्चीस के साल-दो-साल इधर-उधर। देखने पर अन्दाज लगाना मुश्किल है — हिन्दू है या मुसलमान। साँवला रंग। मँझोले का डील-डौल।''[1] 'कुल्लीभाट' एक संस्मरण भी है।

निराला ने कुल्ली के चरित्र का अध्ययन गहराई से किया है इसलिए वे कुल्ली के चरित्र को प्रकाशित करने के लिए कई जगह अपना निर्णय भी देते हैं। उन्होंने कुल्ली को 'जंबुकों के बीच सिंह' की उपाधि दी है। 'कुल्लीभाट' में निराला

1- निराला - कुल्लीभाट, पृ0 16

ने संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मकथा का कुशल समन्वय किया है। कुल्ली का जीवन-चरित्र लिखते समय उन्होंने अपने जीवन की भी बहुत सारी बातें लिखी हैं। उपन्यास की भूमिका में निराला ने लिखा है — ''पंडित पथवारी दीन जी भट्ट (कुल्लीभाट) मेरे मित्र थे। उनका परिचय इस पुस्तिका में है। उनके परिचय के साथ मेरा चरित्र भी आया है और कदाचित अधिक विस्तार भी पा गया है।''[1] वस्तुतः निराला के व्यक्तिगत जीवन के संस्मरण ने इस उपन्यास को सशक्त बना दिया है। सास से वार्तालाप, पत्नी से मुलाकात आदि संस्मरण बाद में निराला के कुल्ली से घनिष्ठता और उससे प्रभावित होने की घटना की पृष्ठभूमिका काम करते हैं।

अपने रेखाचित्रात्मक उपन्यास 'बिल्लेसुर बकरिहा' में निराला बिल्लेसुर के चरित्र को प्रकाश में लाते हैं। जिस प्रकार कुल्लीभाट के चरित्र को प्रकाश में लाने के लिए निराला ने वक्तव्य दिए हैं, वैसा वक्तव्य वे बिल्लेसुर के संबंध में नहीं देते। उसके चरित्र को निराला ने उसी के आचरण और बातचीत से प्रकाशित किया है। बिल्लेसुर कुलि स्वभाव का सीधा-सादा युवक है। लेकिन उस कुटिल समाज ने बिल्लेसुर को जीने के नये-नये गुर सिखाए हैं। लोगों के छल-प्रपंच ने उसमें दूसरों की मनोवृत्ति समझने की क्षमता पैदा कर दी है।

'बिल्लेसुर बकरिहा' उपन्यास की एक विशेषता यह है कि उसमें अनावश्यक कथा सामग्री बहुत कम है। इसका कथानक सुगठित है। पूरी कहानी में निराला बिल्लेसुर पर नजर जमाए रहते हैं। पंडित सत्तीदीन, मन्नी की सास आदि का जो प्रसंग आया है वह कथा को आगे बढ़ाने में सहायक के रूप में। इस संदर्भ में डा० रामविलास शर्मा का कहना है — ''बहुत कम जगह किसी कविता

1- निराला - कुल्लीभाट (भूमिका से), भू

या कहानी में निराला इतनी देर तक – इतनी जगह घुमाते हुए – एक ही पात्र पर दृष्टि केन्द्रित रखते हैं। कथन में सारे घटनाक्रम की बारीकी से – और बिल्लेसुर पर ध्यान जमाए हुए – देखने की शक्ति इस कथा की कलात्मक सफलता का रहस्य है।"[1]

इस उपन्यास का ढाँचा, वातावरण, कथा कहने की शैली, पात्र, कथा का अंत – सब लोक-कथा की तरह है। हास्य और व्यंग्य से पूर्ण इस कथा में निराला पूर्णरूप से स्टस्थ रहे हैं।

'काले कारनामे' भी मुख्य रूप से चरित्र-प्रधान उपन्यास ही है। उपन्यास में नायक मनोहर के चरित्र की विशेषताओं को उभार कर सामने लाया गया है। मनोहर का चरित्र उदात्त है। वह किसी सुंदर युवती के प्रेमजाल में नहीं फंसा है, बल्कि काशी जाकर अछूतों को शिक्षित करने में लगा है। मनोहर के अपने गाँव में तरह-तरह की समस्याएँ हैं, लेकिन निराला उनका काल्पनिक समाधान प्रस्तुत नहीं करते। "काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करने के बदले वह दुख और त्रास के वातावरण में आशा - किरण की झलक भर दिखाकर समाप्त हो जाता है।"[2]

निराला का एक अपूर्ण उपन्यास "चमेली" कथ्य और शिल्प की दृष्टि से एक सशक्त उपन्यास है। उपन्यास की कथावस्तु और शिल्प दोनों ही यथार्थवादी हैं। उपन्यास अगर पूरा हो जाता तो शायद वह 'गोदान' की अगली कड़ी होता।

(घ) कहानी शिल्प में नवीनता :

जिस प्रकार औपन्यासिक शिल्प के क्षेत्र में निराला ने प्रेमचंद की

1- डा० रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य-साधना, भाग-2, पृ० 462
2- वही, पृ० 467

परंपरा का पालन करते हुए उसमें अपनी मौलिकता का परिचय दिया है वैसे ही कहानी-शिल्प के क्षेत्र में भी अपनी सर्जनात्मकता का परिचय दिया । ज्ञातव्य है कि हिंदी कहानी-शिल्प का विकास पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद आदि कथाकारों के आगमन के बाद ही हुआ । उसके पूर्व बीसवीं सदी के प्रथम दशक में जो कहानियाँ लिखी गयी थे शिल्प की दृष्टि से कहानी का प्रयोग-काल है । इस काल की कहानियों में प्रेम, कल्पना, वर्णनात्मकता और इति-वृत्तात्मकता का ही बोलबाला था ।

वस्तुतः हिंदी कहानी की शिल्प-विधि की प्रतिष्ठा प्रसाद, गुलेरी और प्रेमचंद आदि के द्वारा हुई । इनकी कहानियों में वे समस्त शिल्पगत प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं, जो कहानी-कला की आधारशिला है । निराला की कहानियों की शिल्प-विधि प्रेमचंद के यथार्थवादी शिल्प-विधान, और प्रसाद और गुलेरी जी के भाववादी शिल्प-विधान को लेकर विकसित हुई । भाववादी शिल्प के अन्तर्गत उन्होंने 'अर्थ, 'पद्मा और लिली' तथा 'सखी' जैसी कहानियाँ लिखी और यथार्थवादी शिल्प के अन्तर्गत 'देवी' , 'चतुरी चमार' , 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' जैसी कहानियाँ लिखी । अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए उन्होंने संस्मरणात्मक, रेखाचित्रात्मक, रिपोर्ताज के ढंग की, चरित्र प्रधान और यथार्थवादी कहानियाँ लिखी । 'देवी', 'चतुरी चमार' और 'कला की रूपरेखा' की शुरुआत संस्मरणात्मक विवरण से होती है, लेकिन थोड़ी दूर आगे जाने पर निराला – ''अपनी कूँची के एक स्पर्श से संस्मरण को कहानी में बदल देते हैं ।''[1] कहानी के अंत तक पहुँचते ही यह संस्मरण आत्मकथा का रूप ग्रहण कर लेती है । यद्यपि 'कला की रूप रेखा' को निराला ने कहानी की संज्ञा से अभिहित किया है, लेकिन

1- नंदकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग-4 (भूमिका से), पृ0 13

यह सिर्फ कहानी नहीं है, इसमें निबंध-शैली का भी उपयोग हुआ है । निबंध व्यंग्य-विनोद से शुरू होता है । अंत आने से पहले कला पर बातचीत होती है और कुछ देर के लिए निराला का भाषण गंभीर हो जाता है । यह सत्य-घटना पर आधारित है, अतः इसमें रिपोर्ताज का गुण भी आ गया है । वस्तुतः 'कला की रूप-रेखा' कहानी, संस्मरण, निबंध और रिपोर्ताज शैली के तानि-बानि से बुना हुआ है ।

'सुकुल की बीबी' शीर्षक कहानी कुछ दूर तक संस्मरण है फिर कहानी। प्रारंभ में निराला अपने कलकत्ते के जीवन में अर्थाभाव, सुकुल तथा सुकुल की बीबी से मुलाकात, प्रवेशिका परीक्षा की बात लिखते हैं । बाद में उसे कहानी के रंग में रंगकर पेश करते हैं । इस कहानी-शिल्प की एक विशेषता यह है कि इसमें तीन कहानियाँ एक साथ चलती हैं — एक कहानी निराला की अपनी है, (जिसमें कुछ तो सही बातें हैं कुछ कल्पना प्रसूत) दूसरी कहानी सुकुल की बीबी की है और तीसरी सुकुल की बीबी की माँ की । कहानी बहुत विस्तार से कही गयी है, कहानी का ढाँचा भी बहुत ढीला-ढाला है, फिर भी कहानी पर से निराला की पकड़ ढीली नहीं हुई है ।

'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानी सत्य-घटना पर आधारित है । लेकिन यह भी सिर्फ कहानी नहीं है । इसमें भी निबंध कला की झलक मिलती है । निबंध की तरह कहानी यों शुरू होती है — ''लोग कहते हैं । ऐसा लिखा जाए कि एक मतलब हो, उसी वक्त समझ में आ जाए, अपढ़ लोग भी समझें ।''[1] यह कहानी संस्मरण नहीं है । स्थान और व्यक्तियों के नाम बदलकर देखी-सुनी घटना को रिपोर्ताज के रूप में निराला ने इसे लिखा है ।

1- निराला — चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ0 34

'देवी', 'चतुरी चमार' और 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' जैसी कहानियाँ शिल्प और कथ्य की दृष्टि से 'कफन' और 'पूस की रात' की परंपरा की हैं। जिस प्रकार 'कफन' तक आते-आते प्रेमचंद का मोहभंग हो गया था, ठीक वैसे ही उपर्युक्त तीनों कहानियाँ निराला के मोहभंग की दिशा की परिचायक हैं। इन कहानियों में कहानी का पुराना ढाँचा टूट गया है। इनमें निराला का ध्यान न तो कथानक गढ़ने पर रहता है और न ही समस्या के समाधान पर। इनमें परिवेश और पात्र ज्यों-के-त्यों ठीक उसी तरह उठाकर रख दिये गये हैं, जैसे 'कुल्लीभाट' में। पगली और चतुरी के चरित्र को प्रकाश में लाते समय निराला ने अपनी ओर से न कुछ जोड़ा है, न कुछ घटाया है। उनका सारा ध्यान पगली और चतुरी के चरित्र, उनके क्रिया-कलाप, उनके गुण-अवगुण पर केन्द्रित रहता है। इसके साथ बीच-बीच में वे अपनी कहानी भी कहते चलते हैं। ये दोनों कहानियाँ एक तरफ रेखाचित्र हैं दूसरी ओर संस्मरण।

'देवी' में निराला अपने होटल के सामने फुटपाथ पर रहने वाली प्रकृति की मारी से लड़ती हुई पगली भिखारिन का चित्रण करते हैं --'' वह रास्ते के किनारे बैठी थी, एक फटी धोती पहने हुए। बाल कटे हुए। तअज्जुब की निगाह से आने-जाने वालों को देख रही थी। तमाम चेहरे पर स्याही फिरी हुई। ..... उम्र पच्चीस साल से कम। दोनों स्तन खुले हुए। प्रकृति की मारी से लड़ती हुई, मुस्काकर .....।''[1] दूसरी ओर अपनी असफलता, दुःख-दैन्य की कहानी वे इस प्रकार कहते हैं --''मुझे बराबर पेट के लाले रहे। ... अपनी तरफ से मैं जितना लोगों को ऊँचा उठाने की कोशिश करता गया, लोग उतना मुझे उतारने पर तुले रहे और चूंकि मैं साहित्य की नाव से स्वर्ग बना रहा था, इसलिए

1- निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ० 40

मेरी दुनिया भी मुझसे दूर होती गयी, अब मौत से जैसे दूसरी दुनिया में जाकर मैं उस लाश की तरह देखता हूँ।''[1]

'चतुरी चमार' में चतुरी की संतसाहित्य में मर्मज्ञता, कबीरपंथी होने तथा उसके संघर्ष को दिखलाने के साथ ही निराला ने अपने उन्निद्र रोग तथा हिन्दू-सभा के सदस्य होने की चर्चा की है। इन दोनों कहानियों के शिल्प के संबंध में डॉ० रामविलास शर्मा का कहना है -''कथानक लेकर चलने वाली, समस्या के समाधान, नायक-नायिका के विवाह से समाप्त होने वाली कहानियाँ ये नहीं हैं। इनमें परिवेश, पात्र ज्यों-के-त्यों उठाकर कथा में रख दिये गये हैं; मंच पर लाते समय उनका मेकअप नहीं किया गया है। पात्रों में एक प्रकार प्रमुख पात्र निराला स्वयं हैं। कहानी एक तरफ रेखाचित्र है, दूसरी तरफ संस्मरण। इनके साथ ललित-निबंध — रचना-कौशल है,.......। यह ललित निबंध-कला रिपोर्ताज की विधा को छूती है। सड़क पर जब गोरे कवायद कर रहे हैं, गाँव में जब दरोगा जी आये, रामकृष्ण मिशन में सन्यासियों का जीवन — यह सब निराला ने रिपोर्ताज लेखन की कला से चित्रित किया है।''[2]

निराला के कहानी-शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी अधिकांश कहानियाँ कहानी के बने बनाये ढाँचे में पूरी तरह बैठ नहीं पाती। इसका एक बड़ा कारण यह है कि निराला के भावोद्गार एक निश्चित पद्धति में व्यक्त नहीं हो पाते। इसलिए कहानी लिखते समय उनमें भावाभिव्यक्ति की अनेक साहित्यिक विधाएँ, आत्मकथा, निबंध, संस्मरण, रिपोर्ताज, रेखाचित्र आदि घुलमिल जाती हैं। निराला के कहानी-शिल्प की यह नवीनता बहुत कम कहानीकारों की कहानियों में दिखती है।

1- निराला - चतुरी चमार कहानी संग्रह, पृ0 38
2- डॉ0 रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य-साधना, भाग-2, पृ0 470

उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार निराला के प्रारंभिक दौर के उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ के बीच अन्तर्विरोध देखने को मिलता है उसी प्रकार उनकी कहानियों में भी । बल्कि उपन्यासों की तुलना में कहानियों में उनका अन्तर्विरोध तीक्ष्ण रूप में उभर कर सामने आया है । इस बात की पुष्टि इनकी कहानी 'श्यामा' करती है । इस कहानी में भारतीय किसान अपने संपूर्ण उत्पीड़न के साथ प्रकट हुआ है, लेकिन निराला ज्यादा देर उस पर अपनी दृष्टि केन्द्रित नहीं कर पाते । तत्काल ही उनका कवि हृदय काल्पनिक इच्छापूर्ति के सपने देखने लगता है ।

निराला ने अपनी कहानियों में हर वर्ग के चरित्र को स्थान दिया है । इस संदर्भ में डा० लक्ष्मीनारायण लाल का कहना है -''..... निराला की कहानियाँ इस अर्थ में उत्कृष्ट हैं कि ये समाज के सभी पक्षों को छूती हैं, विशेषकर उन तीरों को जहाँ शोषण है, संघर्ष है । इनकी कहानियाँ अपनी मार्मिकता और संवेदना के सहारे मानव विश्लेषण और अध्ययन में सफल हुई हैं, उतनी ही सफलता उन्हें इस सत्य की प्रतिष्ठा में मिली है कि मानव-जीवन अपनी समस्त सीमाओं और संघर्षों के रहते महान और सुंदर है ।''[1]

(ङ) भाषा :

अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए निराला ने पद्य के साथ-साथ गद्य में भी भाषा के अभिनव प्रयोग किये । विदित है कि छायावादी दौर में भाषा का प्रश्न एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में उपस्थित था । खड़ी बोली और ब्रजभाषा के द्वन्द्व से निकलकर यद्यपि खड़ी बोली काव्य-भाषा के रूप में मान्य हो चुकी थी, लेकिन अभी उसको प्रतिष्ठित होना बाकी था । लोगों को यह शिकायत

1- डा० लक्ष्मीनारायण लाल - हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास, पृ०284-5 (प्रथम संस्करण, 1953)

थी कि छायावादी रचनाएँ दुर्बोध होती हैं, उनकी भाषा क्लिष्ट होती है । इन आक्षेपों का उत्तर देते हुए निराला ने 'साहित्य और भाषा' शीर्षक निबंध में लिखा -- ''बड़े-बड़े साहित्यिकों ने प्रकृति के अनुकूल ही भाषा लिखी है । कठिन भावों के व्यक्त करने में प्रायः भाषा भी कठिन हो जाती है । .... साहित्य में भावों की उज्ज्वलता का ही विचार रखना चाहिए । भाषा भावों की अनुगामिनी है ।''[1] भावों की अनुगामिनी के रूप में भी भाषा के दो रूप होते हैं -- भावग्राहिणी भाषा और भाववाहिनी भाषा ।

निराला की रचनाओं में भाषा के ये दोनों रूप प्रयुक्त हुए हैं । वस्तुतः छायावादी दौर के अन्य कवियों की तुलना में निराला के यहाँ भाषा के विविध प्रयोग मिलते हैं । उनकी काव्य-भाषा अनेक रूप प्रकट करती है । [illegible] है कि किसी अन्य छायावादी कवि में भाषा के विविध प्रयोगों का ऐसा चातुर्य नहीं है । प्रसाद की भाषा का आदर्श कालिदास में है जबकि ''निराला की काव्य-भाषा के प्रेरक एक ओर संस्कृत कवि जयदेव हैं, तो दूसरी ओर तुलसी और तीसरी ओर रवीन्द्र ।''[2] यों तो निराला की भाषा पर इन तीनों कवियों का प्रभाव है, लेकिन सबसे अधिक प्रभाव तुलसीदास का है । यही वजह है कि जिस प्रकार तुलसीदास ने 'रामचरित मानस', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' आदि में भाषा के विभिन्न प्रयोग किये, उसी प्रकार निराला ने भी काव्य में 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा', 'वनबेला' तथा 'सरोजस्मृति' में भाषा संबंधी अनेक कौशल दिखाये । ध्यातव्य है कि तुलसीदास की भाषा भावग्राहिणी है इसलिए एक ही कृति में भी भावानुकूल और प्रसंगानुकूल उनकी भाषा रूप बदलती

1- निराला - प्रबंध पद्म, पृ० 18 (प्रथम संस्करण)

2- आचार्य नंददुलारे वाजपेयी - कवि निराला, पृ० 80 (प्रथम संस्करण, 1979)

रहती है। निराला के साथ भी यही बात है। पद्य और गद्य दोनों में उनकी भाषा भावानुकूल परिवर्तित होती रहती है। भाषा की यह विविधता कविता में 'सरोजस्मृति' और गद्य में 'अलका' में देखी जा सकती है। सरोज की मृत्यु के बाद उनके भावोद्गार की भाषा संस्कृतनिष्ठ हिंदी है -

'पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय
चढ़ मृत्यु - तरणि पर तूर्ण-चरण
कह - 'पितः, पूर्ण, आलोक-वरण'

इसी प्रकार सरोज के सौंदर्य-वर्णन में भी निराला संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रयोग करते हैं, लेकिन अपनी सास से बातचीत के प्रसंग का वर्णन उन्होंने बोलचाल की भाषा में किया है -

''वे बड़े भले जन हैं भय्या,
एन्ट्रेंस पास है लड़की वह।''

ज्ञातव्य है कि सन् 36 के पहले तक जिस प्रकार कथा-वस्तु के स्तर पर निराला के उपन्यासों में अन्तर्विरोध है, भाषा के स्तर पर उनमें उसी तरह का अन्तर्विरोध है। भाषा का यह अन्तर्विरोध सबसे अधिक 'अलका' उपन्यास में उभरकर आया है। 'अलका' में ''स्थान-स्थान पर निराला लम्बे-लम्बे वाक्यों वाली ऐसी चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं कि थोड़ी देर के लिए कविता और गद्य का अन्तर मिटता हुआ दिखलाई पड़ता है।''[1] अलका का रूप-वर्णन करते हुए निराला लिखते हैं -''पत्रों की अविरल से बाहर का चिट्ठी चलि बक्स में डाल

1- नंदकिशोर नवल - निराला रचनावली, भाग-3, पृ0 10 (भूमिका से) प्रथम संस्करण 1983

दिया, और अचपल मन्द-मृदु-चरण मूर्तिमती महिमा-सी, अनावृत-मुख बढ़ती हुई माता के पास लौट आई।''[1] इसी उपन्यास में कई जगह निराला ने बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। ''पाहुने लिवनि आये हैं, सुराज क्या है रे।''[2] भाषा का यह स्तर 'अप्सरा' उपन्यास में भी दिखता है। एक ओर निराला लिखते हैं -- ''अपनी देह के वृन्त पर अपलक खिली हुई ज्योत्स्ना के चंद्र पुष्प की तरह एक अज्ञात प्रणय की वायु डोल उठती।''[3] दूसरी ओर सहज भाषा के अंकुर फूटते हुए भी दिखाई देते हैं -- ''ठीक तो हम लोगों के लिए है, जिनके पास मजबूत कपड़े नहीं।''[4] सन् 34-36 तक निराला की भाषा का लगभग यही रूप रहा। संस्कृत-निष्ठ और सहज भाषा का प्रयोग उस समय की कहानियों में भी देखी जा सकती है। ''पद्मा के मुखचंद्र पर षोडश कला की चंद्रिका अम्लान खिल रही है। एकांत कुंज की कली-सी प्रणय के वासंती मलय-स्पर्श से खिल उठती, विकास के लिए व्याकुल हो रही है।''[5] 'ज्योतिर्मयी' शीर्षक कहानी में भी भाषा का यही रूप दिखता है -- ''... मर्मोज्ज्वल मुख पर प्रसन्न कौतुकपूर्ण एक ज्योतिश्चक्र खोलकर यथास्थान आ गए।''[6]

1936 के बाद कथा-वस्तु में परिवर्तन के साथ ही निराला की भाषा में परिवर्तन स्पष्ट दिखने लगता है। इस काल तक निराला इस बात को अच्छी तरह से समझने लगे थे कि लिखित भाषा में शक्ति तब आती है जब वह बोलचाल की भाषा की तरह प्रवाहपूर्ण हो। इसलिए दूसरे चरण के अन्तर्गत जो उनके

1- निराला - अलका, पृ0 11 (द्वितीय संस्करण)
2- वही, पृ0 14
3- निराला - अप्सरा, पृ0 11 (संस्करण, 1980)
4- वही, पृ0 102
5- निराला - लिली कहानी संग्रह, पृ0 13
6- वही, पृ0 23

यथार्थवादी उपन्यास हैं उनकी भाषा सहज अलंकार के अनावश्यक साज-सम्भार से मुक्त, प्रवाहमयी बोलचाल की भाषा है। अपने कविता संग्रह 'नये पत्ते' की भूमिका में निराला ने हिंदी पाठकों से अनुरोध किया कि वे अपनी भाषा की रूप-रेखाएं देखें। स्पष्ट है कि लाखों-करोड़ों दलित और शोषित जनता की भाषा के कवि होने के नाते निराला को अपनी जिम्मेवारी का गहरा अहसास था। इसलिए उनके दूसरे चरण के उपन्यास और कहानियों की भाषा बोलचाल की भाषा के निकट है। यों तो 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' की भाषा भी सहज और प्रवाहमयी है, लेकिन 'कुल्लीभाट', बिल्लेसुर बकरिहा' और 'चमेली' उपन्यास तथा 'देवी', 'चतुरी चमार', 'दो दाने' आदि कहानियों की भाषा अपेक्षाकृत अधिक सहज है। ये रचनाएं निराला के इस कथन को चरितार्थ करती हैं कि ''रचना युद्ध-कौशल है और भाषा तदनुरूप अस्त्र।''[1] सामाजिक वास्तविकता को अभिव्यक्त करते समय निराला की भाषा अधिक बोधगम्य हो जाती है। सारा चित्रण अपने चारों ओर के वातावरण के साथ सजीव हो उठता है। इस संदर्भ में 'चमेली' उपन्यास के प्रारंभिक अंश द्रष्टव्य है—''खिलता उतरता बैसाख। खलिहान में गेहूं, जौ, चना, सरसों, मटर और अरहड़ की रासि लगी हुई है। गांव के लोग मड़नी कर रहे हैं। कोई-कोई किसान चमार, चमारिन की मदद से माड़ी हुई राह ओसा रहे हैं। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है। शाम पांच का वक्त। सूरज इस दुनिया से मुंह फेरने को है। एक जगह घने आम के पेड़ के नीचे सब जगहों से ज्यादा लाव रही है।''[2] ऐसी ठेठ हिंदुस्तानी भाषा लिखने में

1- निराला - प्रबंध प्रतिमा, पृ० 86, (द्वितीय संस्करण)

2- निराला - चमेली (निराला रचनावली, भाग-4), पृ० 265

निराला की बराबरी शायद ही कोई दूसरा लेखक कर सकता है । इसी को लक्ष्य करके गंगाप्रसाद पाण्डेय ने लिखा है -"ऐसी ठेठ हिंदुस्तानी भाषा लिखने में निराला की समानता आज कोई दूसरा लेखक नहीं कर पाता । हर एक प्रयोग में वे एक नई शैली का निर्माण करते चलते हैं । समय-समय पर हिंदी-उर्दू तथा हिंदुस्तानी का मनमाना प्रयोग उनकी सबसे बड़ी विशेषता है । संस्कृत गर्भित शब्दों का प्रयोग भी वे वहीं करते हैं जहाँ भाषा-भाव की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का उन्हें उल्लेख करना पड़ता है, अन्यथा उनकी भाषा सहज सरल शैली है ।"[1]

जिस प्रकार निराला कविता में क्रियापद हटा देते हैं उसी प्रकार कथा-साहित्य में भी । 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' उपन्यास में उन्होंने कई बार क्रियापद को हटा दिया है । 'कुल्लीभाट' में -"छाता बगल में, हाथ में जूते, सामने मील भर ऊसर, चार बजे की चटकती धूप ।"[2] 'बिल्लेसुर बकरिहा' में -"बिल्लेसुर उस गरमी में बनावटी नरमी लाते हुए, खीस निपोड़कर जवाब देते हुए, जरा मुस्कराकर गायों के पीछे तरह-तरह के काम में दौड़ते हुए ।"[3] 'चोटी की पकड़' में-"कितने ही मंदिर, उद्यान, मैदान, तालाब, प्राचीर, कचहरी । .... भयंकर अट्टालिका, पीछे की तरफ कुछ गिरी हुई । फिर भी विशाल उद्यान की ऊँची प्राचीर से सुरक्षित ।"[4] 'काले कारनामे' में -" अनेक प्रकार की चिड़ियाँ । ताल पर सिंघाड़े की बेल फैलती हुई । लड़के अखाड़े कूदते हुए । औरतें काम-काज के लिए बाहर जाती हुई ।"[5]

1- गंगाप्रसाद पाण्डेय - महाप्राण निराला, पृ0 140
2- निराला - कुल्लीभाट, पृ0 15
3- निराला - बिल्लेसुर बकरिहा, पृ0 93
4- निराला - चोटी की पकड़, पृ0 127
5- निराला - काले कारनामे, पृ0 22

निराला की भाषा की एक विशेषता यह है कि वे हिंदी लिखते हुए भी उसे अवधी के स्तर पर ले जाते हैं। 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' की भाषा अवधी मिश्रित हिंदी है –सपना फलियायगा, निगाह ताड़ते हुए, चोर की कठेली भी आंगन में रह जाए– इस तरह के प्रयोग 'बिल्लेसुर बकरिहा' में भरे पड़े हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य की तरह ही निराला के कथा-साहित्य में भी मुख्यतः से भाषा के दो रूप देखने को मिलते हैं। एक तो आभिजात्य रूप है – जो छंद, बंध, शास्त्रीय संगीत की बंदिशों से अनुशासित संस्कृत बहुल पदावली को अपने अंदर समेटे हुए है, दूसरा रूप सहज मुहावरेदार और जीवंत यथार्थवादी शैली का है। भाषा के ये दोनों रूप अपने समय की सर्जनात्मकता का निर्वाह करते हैं।

—

पंचम अध्याय

उपसंहार

पंचम अध्याय

पूर्ववर्ती प्रकरणों में हुए समस्त विवेचन के उपरांत यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि निराला का कथा-साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से हिंदी कथा-साहित्य की अमूल्य निधि है तथा यथार्थवादी धारा का अविच्छिन्न अंग है। यह सही है कि उनके कथा-साहित्य में रोमांटिक भावबोध, काल्पनिक उड़ान, भाववाद, अध्यात्मवाद के भी रंग कहीं-कहीं बिखरे हुए हैं, किंतु मुख्य धारा सामाजिकता की ही है, जीवन वास्तविकता के समीकरण की है। वस्तुतः इस प्रकार के अन्तर्विरोध उस समय के हर श्रेष्ठ रचनाकार में विद्यमान हैं जिसका प्रीत तत्कालीन समाज की संरचना में था। यह दिलचस्प तथ्य है कि यूरोपीय साहित्य में रोमांटिसिज्म के उपरांत यथार्थवाद का आविर्भाव हुआ और यह बहुत हद तक पूर्ववर्ती प्रवृत्ति के विरोध में उत्पन्न हुआ था। लेकिन हिंदी-साहित्य में रोमांटिसिज्म (छायावाद) और यथार्थवाद दोनों का समानान्तर विकास हुआ। 1920 ई० से हिंदी काव्य-क्षेत्र में छायावादी काव्यधारा का आरंभ हुआ और ठीक इसी समय से कथा-क्षेत्र में प्रेमचंद द्वारा यथार्थवादी धारा का विकास हुआ। निराला का व्यक्तित्व और कृतित्व स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) एवं यथार्थवाद दोनों के ताने-बाने से बुना हुआ दिखाई देता है। छायावादी दौर में 'जुही की कली', 'यमुना के प्रति', 'प्रेयसी' जैसी कविताओं में निराला जहाँ कल्पना की उड़ान कर रहे थे वहाँ 'भिक्षुक', 'दान', 'विधवा', 'बादल राग' जैसी कविताओं में समाज में व्याप्त दैन्य, धार्मिक पाखण्ड, नारी दुरावस्था, किसानों के शोषण आदि का चित्र भी प्रस्तुत कर रहे थे। यही प्रवृत्ति उनके कथा-साहित्य में दिखाई पड़ती है। 'अलका', 'अप्सरा' जैसे उपन्यासों में, 'प्रेमपूर्ण तरंग',

'सखी' जैसी कहानियों में रोमैंटिक भावबोध हावी हो उठा है, वहां 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसे उपन्यास, 'चतुरी चमार', 'देवी', 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' जैसी कहानियों में सामाजिक यथार्थ का चित्र प्रशस्त हो उठा है ।

कहने का मतलब यह कि निराला के कथा-साहित्य में रोमैंटिक रंग का हल्कापन उनकी सामाजिक चेतना की सान्द्रता में बाधक नहीं बन पाया है, रोमैंटिक भावबोध उनके सामाजिक बोध पर हावी नहीं हो पाया है, और इस तरह निराला का कथा-साहित्य हिंदी कथा-साहित्य की उस यथार्थवादी शृंखला की कड़ी बन जाता है जो भक्ति-काल से शुरू हुआ था और बीसवीं सदी में जिसके सबसे समर्थ लेखक प्रेमचंद माने जाते हैं । गौर करने की बात है कि 1936 ई० के प्रगतिशील लेखक सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचंद ने लेखकों से क्रान्ति जगाने वाले साहित्य-सर्जन का आह्वान किया था और माना जाता है कि 1936 ई० से न केवल हिंदी-साहित्य, बल्कि समस्त भारतीय साहित्य यथार्थवादी-जनवादी धारा से आप्लावित हो उठा । लेकिन सच्चाई यह है कि प्रेमचंद स्वयं बहुत पहले से इस प्रकार का साहित्य-लेखन करते आ रहे थे और निराला भी लगभग यही काम कर रहे थे । छायावाद के प्रतिनिधि कवि पंत विधिवत् प्रगतिशील लेखक संघ में शामिल हुए, छायावाद का 'युगांत' घोषित कर उन्होंने 'युगवाणी' की घोषणा की । निराला पंत की तरह प्रगतिशील लेखक संघ से कभी नहीं जुड़े, लेकिन जीवन-यथार्थ पर उनकी पकड़ किसी भी प्रगतिशील लेखक से कम नहीं रही । ''साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है'',[1] -प्रेमचंद

1- प्रेमचंद - साहित्य का उद्देश्य, पृ० 17 (संस्करण, 1967)

है ये शब्द निराला पर अक्षरशः लागू होते हैं। निराला ने किसी संघ या संस्थान से जुड़ कर प्रगतिशीलता की दीक्षा नहीं ली, बेलवाड़ा से लेकर कलकत्ता जैसी महानगरी तक के जीवनानुभव, और स्वाधीनता आन्दोलन, विश्व राजनीति, देश की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों ने ही उनके अन्दर वह सूक्ष्म दृष्टि पैदा कर दी थी, जिससे वे रोमांटिक, भावोच्छ्वास, उमंग, तरंग के कुहासे से बार-बार घिरकर सामाजिक यथार्थ के ठोस धरातल पर आ जाते हैं।

इस सामाजिक चेतना की जितनी सशक्त अभिव्यक्ति निराला की कविताओं में हुई है उतनी ही कथा-साहित्य में भी। इस दृष्टि से उनके 'अलका', 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे', 'चमेली' उपन्यास तथा 'देवी', 'चतुरी चमार', 'श्यामा', 'कमला', 'न्याय', 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया', 'दो दाने' आदि कहानियाँ अपेक्षाकृत अन्य कहानियों और उपन्यासों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि 'अप्सरा', 'निरुपमा', 'प्रभावती' उपन्यास और 'पद्मा और लिली', 'स्वामी सारदानंद जी महाराज और मैं', 'भक्त और भगवान', 'कला की रूपरेखा', 'सुकुल की बीवी' आदि कहानियों के महत्त्व पर प्रश्न-चिह्न लगाया जा सकता है। इनमें जो अंतर होगा, वह परिमाणात्मक है, गुणात्मक नहीं।

जैसा कि हम जानते हैं निराला के कथा-साहित्य में दो प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं -- एक प्रवृत्ति जीवन की वास्तविकता, संघर्ष, दुख, दैन्य को चित्रित करने की है और दूसरी काल्पनिक कथावृत्ति के सपने रचने की। लेकिन यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कवि कल्पनाशील प्राणी होता है। जो चीज उसे यथार्थ में नहीं मिलती, उसे वह भावलोक में ढूँढता है। निराला के साथ भी

यही बात है । कथापूर्ति के लिए वे छायालोक में जाते हैं लेकिन छायालोक उन्हें अधिक देर तक बाँध नहीं पाता, तुरंत ही जीवन का यथार्थबोध उन्हें संघर्ष की ओर खींच लेता है । ज्ञातव्य है कि कल्पना और यथार्थ का अभिन्न संबंध है । जो रचनाकार जितना ही यथार्थवादी होता है उसकी कल्पना शक्ति भी उतनी ही तीव्र होती है । यह बात हम प्रेमचंद, प्रसाद और निराला जैसे श्रेष्ठ रचनाकारों में देख सकते हैं । एक ओर प्रेमचंद का यथार्थबोध उन्हें 'गोदान' 'पूस की रात' जैसी यथार्थवादी रचनाएँ लिखने को प्रेरित करता है, दूसरी ओर उनकी कल्पना यथार्थ के साथ मिलकर 'कफन' की रचना करने को प्रेरित करती है । विदित है कि प्रेमचंद ने 'कफन' में जिस तरह मानव-मूल्यों के ह्रास को दिखाया है, वह उनके समाज में संभवतः नहीं था । उनकी कल्पना ने उस युग को देखा है जिसमें मानव-मूल्यों से हीन घीसू और माधव जैसे चरित्र प्रमुख होंगे । इसी तरह निराला की कल्पना अत्यंत सशक्त है, इसका कारण यह है कि उनका यथार्थबोध बहुत गहरा है । कल्पना उनके यथार्थबोध को और गहरा बनाती है । वास्तविकता की तह तक उन्हें पहुँचाती है, जिसके कारण निराला प्रेम यथार्थ को पैनी नजर से देख पाने में सफल हुए हैं । अतः 'अप्सरा', 'प्रभावती' आदि उपन्यासों तथा 'श्यामा' जैसी कहानियों में निराला पर कल्पना का हावी होना निरर्थक नहीं है । वस्तुतः कल्पनाशीलता मनुष्य की जिजीविषा को सबल बनाता है, परिवेश की सीमाओं के अतिक्रमण का समर्थन करती है और हर प्रकार के गुलामी के जुए को उतार फेंकने को प्रेरित करती है । यह कल्पनाशीलता निराला के यथार्थवादी उपन्यासों में भी अपना चमत्कार दिखाती है । वस्तुतः निराला के चिंतन में यथार्थवाद और कल्पनाशीलता (रोमैंटिसिज्म) घुल-मिल गए हैं ।'अप्सरा'

उपन्यास में जहाँ कनक-राजकुमार के प्रणय व्यापार के दृश्य देखने को मिलते हैं, वहाँ चंदन जैसा पात्र भी है जो किसानों के संगठन बनाने के अपराध में जेल जाता है। 'अलका' में अलका-विजय, वीणा-अजित के प्रेम-प्रसंग हैं तो दूसरी तरफ ये पात्र किसानों को शिक्षित कर उन्हें संगठित करने का प्रयास करते हैं। 'कुल्लीभाट' में कुल्ली ग्रामीण स्तर पर, वर्ण और धर्म की दीवार को तोड़ने के साथ ही अछूतोद्धार और ग्रामीणों को शिक्षित करने का काम करते हैं। 'प्रभावती' में प्रभावती और देव के प्रेम-प्रसंग हैं तो यमुना जैसी क्रांतिकारी युवती भी है, जो देशोद्धार के लिए नारी वर्ग को प्रेरित करती है। इसी तरह की कल्पनाशीलता ~~[illegible]~~ निराला की यथार्थवादी कहानियों में भी है।

निराला के चिंतन की यह विशेषता है कि वे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं को जोड़कर देखते हैं।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ किसान हैं, लेकिन सबसे दयनीय स्थिति उन्हीं की है; ब्रिटिश साम्राज्य में भी और आज भी। शोषण चक्र में सबसे ज्यादा ये ही पिसे जाते हैं। साम्राज्यवादी दौर में ये जी-जान से खेतों में मेहनत करते थे और जब फसल तैयार होती थी तब फसल बेच कर उन्हें लगान देना पड़ता था। यही नहीं फसल नहीं होने पर भी लगान देना अनिवार्य था। लगान नहीं देने पर उनकी कुर्की-जब्ती होती थी। उन्हें कोड़ों की मार सहनी पड़ती थी। इसके साथ ही साम्राज्यवादी शोषण का सबसे ज्यादा असर किसानों पर होता था। साम्राज्यवाद के देशी पिट्ठुओं – सामंतों से किसानों का स्वार्थ टकराता था। अतः निराला का विचार था कि भारत को अगर साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त करना है तो सबसे पहले जमींदारों के शोषण से किसानों को मुक्त कराना होगा।

निराला के राजनीतिक चिंतन की यह विशेषता थी कि वे राजनीति का अर्थ सिर्फ साम्राज्यवाद से मुक्ति को ही नहीं मानते थे । उनका विचार था कि भारत को वास्तविक आजादी तभी मिलेगी जब यह साम्राज्यवादी शोषण के साथ-साथ सामंतवादी शोषण से भी मुक्त होगा । भारत का जितना शोषण साम्राज्यवाद ने किया, उससे अधिक इन देशी सामंतों ने किया ~~है शुभाशय पहुंचाया~~ । इसके साथ ही सामंती व्यवस्था बहुत सारे जीर्ण-शीर्ण मूल्यों का पोषण एवं संरक्षण करती थी। इसलिए भी सामंती व्यवस्था का उन्मूलन आवश्यक था। आन्दोलन के तभी तभी सफल होंगे जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रमुख सहायकों, राजाओं, जागीरदारों और जमींदारों की ताकत पर जोरदार प्रहार किए जायेंगे। निराला ने स्वाधीनता आन्दोलन में किसानों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना, क्योंकि भारत कृषि-प्रधान देश है । जिस देश की अस्सी प्रतिशत जनता स्वराज का नाम न जानती हो उस देश में स्वराज की कल्पना वायवीय कल्पना है । किसान आन्दोलन के द्वारा ही साम्राज्यवाद का सामाजिक आधार नष्ट किया जा सकता था, जो सामंती शक्तियां साम्प्रदायिकता उभारकर राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर कर रही थीं उन्हें असफल किया जा सकता था ।

इसलिए उन्होंने देश के युवा वर्ग का आह्वान किया कि वह किसानों को संगठित कर उन्हें आन्दोलन के पथ पर अग्रसर करें । निराला का क्रांतिकारी दृष्टिकोण उन संकीर्ण राष्ट्रवादियों से भिन्न है जो भारत की उपासना करते हुए भारतीय जनता के दुःख-दर्द को भूल जाते हैं, जिन्हें सामंती उत्पीड़न दिखाई नहीं देता ।

निराला राजनीतिक आन्दोलन की सफलता के लिए सामाजिक क्रांति को अनिवार्य मानते थे । वस्तुतः छायावाद भारत में आमूल सामाजिक क्रांति की

आकांक्षा का साहित्य है । वह वर्गगत उत्पीड़न का विरोधी, शूद्र और नारी की समानता का समर्थक, धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विध्वंसक साहित्य है। छायावाद के प्रतिनिधि कवि होने के नाते ये सारी विशेषताएँ निराला की रचनाओं में विद्यमान हैं । उनका विचार था कि भारत की वास्तविक आजादी तभी मिलेगी जब वह साम्राज्यवादी शोषण के साथ-साथ सामंतवादी शोषण से भी मुक्त होगा । उनके लिए जाति-प्रथा का अंत, हिंदू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार तथा समानता के आधार पर समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता थी । जब तक अछूतों को सवर्णों की तरह समान अधिकार नहीं मिलता, जब तक मुसलमान देश की जीवनधारा में नहीं मिलते, तब तक भारत के नव-निर्माण के विषय में सोचना फिजूल है । निराला का विचार था कि देश के नेता जिन आर्थिक और लक्ष्यों को लेकर आगे बढ़ रहे हैं उससे सामाजिक क्रांति का सामंजस्य अनिवार्य है। क्योंकि जो समाज सड़ा हुआ है, जिसकी नींव कमजोर पड़ गयी है, जिसकी मान्यताएँ आज प्रासंगिक नहीं रह गयी हैं ऐसे समाज को बदलना बहुत आवश्यक है । इसके लिए जरूरी है कि अछूतों का उद्धार किया जाए । निराला ने समाज की सच्ची शक्ति पीड़ित, दलित, अछूतों में देखी । उनके लिए अछूतोद्धार फुरसत के वक्त में करने वाला कार्य नहीं था ।

राष्ट्र और समाज के विकास में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। निराला ने भारतीय समाज में घुटती हुई नारी का पक्ष लिया, उनको वाणी दी। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में नारी-जीवन की अनेक समस्याओं – विधवा-समस्या, अन्तर्जातीय विवाह आदि का चित्रण ही नहीं किया, समाज में नारी की महत्ता स्थापित कर उनके जीवन को सुखमय बनाने की भी वकालत की ।

किसानों में नयी चेतना आयी, वे भी अपनी वास्तविक स्थिति से परिचित थे, समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों से परिचित थे – उसके लिए निराला ने किसानों की शिक्षा की अनिवार्यता की बात कही । अशिक्षा के कारण ही किसान अपने शोषण को पूर्वजन्म का फल मानकर बैठ जाते हैं, उनमें ऊँच-नीच का भेद-भाव बना रहता है, इसके कारण वे संगठित नहीं हो पाते और संगठित नहीं हो पाने के कारण वे सामंती शोषण का विरोध नहीं कर पाते ।

भारत में अँग्रेजी शासन को सुदृढ़ आधार देने में सामंतों का बहुत बड़ा हाथ था । इसलिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति तभी संभव थी जब किसान सामंती कुचक्र से मुक्त होते । वस्तुतः उप-निवेशों में क्रांति की मुख्य शक्ति किसान रहे हैं – इसलिए निराला ने क्रांति की इस शक्ति को शिक्षित करने की जरूरत बहुत तीव्रता से महसूस की ।

राष्ट्र के विकास के पथ पर अग्रसर करने में निराला ने स्त्रियों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना है । इसलिए उन्होंने नारी की स्वाधीनता की आवाज उठायी । नारी तभी स्वाधीन हो सकती है जब उसमें स्वयं सोचने की शक्ति आयेगी और यह शक्ति शिक्षा के द्वारा ही संभव है । अतः नारी शिक्षा अनिवार्य है । नारी शिक्षा इसलिए भी आवश्यक है कि बच्चा – जो देश का भविष्य है –उसका अधिक समय माँ के साथ ही बीतता है, उसके व्यक्तित्व के निर्माण में माँ की भूमिका महत्वपूर्ण होती है । अतः जब माँ शिक्षित होगी तभी वह बच्चे के व्यक्तित्व का विकास सही ढंग से कर सकती है ।

अशिक्षा के कारण ही स्त्री को आर्थिक रूप से परावलंबी बनना पड़ता है और पराश्रित रहने के कारण उसे घर की चारदीवारी में कैद रहना हर प्रकार

की यातना सहनी पड़ती है, पति या संरक्षक के न रहने पर उसे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती है। अतः स्वावलम्बी बनने के लिए भी नारी - शिक्षा अनिवार्य है।

निराला-साहित्य में वेदान्त-दर्शन, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, सरस्वती, महावीर, दुर्गा और निर्गुण ब्रह्म है। लेकिन इन सबका अधिष्ठान भारत है। महावीर की मूर्ति में उन्हें भारत का रूप दिखलाई देता है। निराला पौराणिक प्रतीकों को नये अर्थ देते हैं, देवी-देवताओं को प्रतीक रूप में इस्तेमाल करते हैं। इन्हीं देवी-देवताओं का सहारा लेकर वे पुरानी जीर्ण-शीर्ण आस्थाओं पर प्रहार करते हैं।

निराला में जीवन पर्यन्त भारतीय वेदांत, शास्त्र, पुराण, अध्यात्मवाद के अवगाहन की प्रवृत्ति बनी रही, इसी का सहारा लेकर वे वर्ण-व्यवस्था, जर्जर मान्यताओं आदि के प्रति विद्रोह करते हैं। निराला वेदांत की क्रांतिकारी व्याख्या करते हैं। उनका वेदांत स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़कर नये-नये अर्थ ग्रहण करता है। इसी का आश्रय लेकर निराला सामाजिक विकास को, जीवन को उसकी समग्रता में समझते हैं। निराला सृष्टि एवं समाज को भगवान की रचना मानकर मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण, सामाजिक विषमता, वर्ण-व्यवस्था, विधवा-विवाह, गरीबी जैसी तमाम सामाजिक समस्याओं को ईश्वर की लीला बताकर उनके वास्तविक स्वरूप पर लीपा-पोती नहीं करते, बल्कि उसकी जड़ को एक खास समूह की स्वार्थ-परता में देखते हुए उसके उन्मूलन के लिए शोषित पीड़ित जनता को अपने लेखन के द्वारा जगाने का प्रयत्न करते हैं। जन-साधारण को रूढ़ियों से मुक्त करने के क्रम में वे समाज की कुरीतियों, पंडों और मुल्लाओं पर व्यंग्य-बाणों की वर्षा कर

सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश करते हैं । उनके कथा-साहित्य के पात्र और वे स्वयं भी समाज की गलित मान्यताओं, धार्मिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करने के साथ ही कांग्रेस की गलत नीतियों का भी विरोध करते हैं । क्योंकि निराला के साथ कथा-साहित्य के बने-बनाये ढर्रे में नहीं आ पाते इसलिए वे कथा-साहित्य के ढर्रे में नवीनता पैदा करते हैं । अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अपने कथा-साहित्य में भाषा के विविध प्रयोग किये हैं । भाव के अनुसार उनकी भाषा भी परिवर्तित होती चलती है । उनके रोमैंटिक उपन्यासों और कहानियों की भाषा मुख्य रूप से काव्यात्मक एवं संस्कृत गर्भित है जबकि यथार्थवादी उपन्यासों और कहानियों की भाषा बोलचाल की भाषा, जीवन-संघर्ष की भाषा है । निराला की भाषा भावों की अनुगामिनी है । उनकी रचनाओं में भाषा के दोनों रूप भावग्राहिणी और भावबोधिनी देखने को मिलते हैं ।

निराला के कथा-साहित्य में अपनी प्रखरता दिखाने वाली सामाजिक चेतना उनके सामाजिक जीवन की प्रयोगशाला का आविष्कार है । किसानों, अछूतों, दलितों और शोषितों के प्रति उनमें सहानुभूति किताबों में ऐसे दस्तावेजों को पढ़ने से नहीं पैदा हुई थी, बल्कि उनके साथ रहकर उनके जैसा जीवन जीकर उन्होंने यह सब अर्जित किया था । निराला का इनसे प्रत्यक्ष संबंध रहा जो छायावादी कवियों में किसी का नहीं था । सच तो यह है कि निराला ने जिस तरह किसानों को संगठित करने, अछूतों की समस्याओं का अपने व्यक्तिगत स्तर पर हल करने में सक्रिय भागीदारी निभाई, वैसी भागीदारी ग्रामीण जीवन के सशक्त कथाकार प्रेमचंद ने भी नहीं निभाई । इस तथ्य की पुष्टि दोनों की जीवनी से होती है । निराला ने महिषादल में किसानों को संगठित करने का काम किया था, बैसवाड़ा में चल रहे किसान आन्दोलन में भाग लिया था । स्वाधीनता आन्दोलन से भी निराला का गहरा

संदेश था ।

यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि प्रगतिशील आन्दोलन द्वारा 1936 ई० के बाद साहित्य में जिस यथार्थवादी लेखन की जोरदार अपील की गयी वैसा लेखन उसके पहले से न केवल प्रेमचंद बल्कि निराला एवं जयशंकर प्रसाद जैसे छायावादी रचनाकार भी कर रहे थे । जिस दौर में प्रेमचंद 'गोदान' जैसा उपन्यास लिख रहे थे, उसी दौर में प्रसाद 'तितली' और निराला 'देवी' तथा 'चतुरी चमार' जैसी रचनाओं से हिन्दी कथा-साहित्य को समृद्ध कर रहे थे । ये रचनाएँ प्रगतिशील आन्दोलन के शुरू होने के पहले प्रकाश में आ चुकी थी । वस्तुतः प्रेमचंद एवं निराला के कथा-साहित्य ने हिन्दी-साहित्य में यथार्थवादी की वह जमीन तैयार की जिस पर प्रगतिशील लेखक संघ बना । हिंदी कथा-साहित्य में अकसर प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा का उल्लेख किया जाता है, परन्तु समग्र विश्लेषण के बाद हम यह कह सकते हैं कि कथा-साहित्य में यथार्थवादी, जनवादी एवं सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति को सुनिश्चित करने में प्रेमचंद अकेले नहीं थे, प्रसाद और निराला ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया ।

यह सही है कि निराला के कथा-साहित्य में भारतीय कृषक समाज ही प्रमुख है, मजदूरों का चित्रण हाशिए पर है, लेकिन इससे उनकी सामाजिक चेतना पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता । भारतीय समाज में उस दौर में मजदूर वर्ग का उदय हो ही रहा था, जबकि कृषक वर्ग सदियों से भारतीय समाज की मुख्य धारा ही नहीं बल्कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ बना हुआ था । अतः उसकी समस्या पर ध्यान जमा भारतीय परिवेश के प्रति सजग रचनाकार के लिए स्वाभाविक ही था । निराला ने मुख्य रूप से ग्रामीण जीवन की समस्या को

चाहे वह जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण हो या सवर्ण हिंदुओं द्वारा अछूतों के साथ किया जाने वाला अत्याचार हो, वैधव्य के बारागार में सिसकती युवती हो या हिंदू-मुस्लिम समस्या – सबको अपने कथा-साहित्य का वर्ण-विषय बनाया और उसके प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाकर शोषण, दमन, भेदभाव विहीन समाज बनाने की प्रेरणा दी। आज के संदर्भ में स्थिति बहुत बदली है। मजदूर वर्ग अब किसानों की अपेक्षा प्रभावशाली बन गया है। आज उसके शोषण के नये-नये तरीके पूंजीपतियों के द्वारा अपनाये जा रहे हैं; किसानों, बेतिहर मजदूरों की स्थिति भी चिंताजनक है। आज के लेखक निराला के कथा-साहित्य से बहुत-कुछ सीखते हुए वर्तमान समय में यथार्थवादी धारा का विकास कर सकते हैं।

इस प्रकार निराला क्रांतिकारी यथार्थवाद के कथा-शिल्पी सिद्ध होते हैं। यद्यपि उनकी अपनी सीमाएँ और अन्तर्विरोध भी हैं, परन्तु समग्रता में देखने पर यह तथ्य उजागर होता है कि सामाजिक दृष्टि से वे अत्यंत जागरूक और प्रगतिशील कथाकार हैं।

—

ग्रंथानुक्रमणिका

ग्रंथानुक्रमणिका

मूल ग्रंथ सूची :

उपन्यास

1- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : अप्सरा, गंगा पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ, 1931 ई०

2- ,, ,, : अलका, गंगा पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ, 1933 ई०

3- ,, ,, : प्रभावती, सरस्वती पुस्तक भंडार, लखनऊ, 1936 ई०

4- ,, ,, : निरुपमा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1936 ई०

5- ,, ,, : कुल्लीभाट, गंगा पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ, 1939 ई०

6- ,, ,, : बिल्लेसुर बकरिहा, सुधा-मंदिर, उन्नाव, 1942 ई०

7- ,, ,, : चोटी की पकड़, किताब महल, इलाहाबाद, 1946 ई०

8- ,, ,, : काले कारनामे, कल्याण मंदिर, प्रयाग, 1950 ई०

9- ,, ,, : चमेली (अपूर्ण उपन्यास)

10- ,, ,, : इन्दुलेखा (अपूर्ण उपन्यास)

कहानी संग्रह

1- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : 'लिली', गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1934 ई०

2 : 'सखी' गंगा-पुस्तक-माला, लखनऊ 1935

3- ,, ,, : 'सुकुल की बीवी', भारती-भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1941 ई०

4- ,, ,, : 'चतुरी चमार', किताब महल, इलाहाबाद, 1945 ई०

5 ,, ,, : 'देवी', राष्ट्रभाषा विद्यालय, वाराणसी 1948 ई०

काव्य

1. परिमल " " गंगा पुस्तक-माला, लखनऊ 1929

निबंध ,,

1- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : 'प्रबंध पद्म', गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, 1934 ई०

2- ,, ,, : 'प्रबंध प्रतिमा', भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1940 ई०

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1- अयोध्या सिंह : 'भारत का मुक्ति संग्राम', मैकमिलन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1977 ई०

2- ओम शुक्ल : 'हिन्दी उपन्यास की शिल्प-विधि का विकास', अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1964 ई०

3- इन्द्रनाथ मदान (सम्पादक) : 'निराला', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1975 ई०

4- गंगा प्रसाद पाण्डेय : 'महाप्राण निराला', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1968 ई०

5- जवाहरलाल नेहरू : 'एन आटोबायोग्राफी, ' जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल फन्ड, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1980 ई०

6- दूधनाथ सिंह : 'निराला: आत्महंता आस्था, ' नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972 ई०

7- नंदकिशोर नवल (सम्पादक) : 'निराला रचनावली- भाग-1, 3, 4, 6, ' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983 ई०

8- नंददुलारे वाजपेयी : 'कवि निराला, ' मेकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979 ई०

9- नामवर सिंह : 'छायावाद, ' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1979 ई०

10- नेमिचंद जैन (सम्पादक) : 'मुक्तिबोध रचनावली - भाग-4, ' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1980 ई०

11- प्रेमचंद : 'साहित्य का उद्देश्य, ' हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967 ई०

12- मुकुन्द द्विवेदी (सम्पादक) : 'हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली-भाग-7, ' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982 ई०

13- येवग्येनी पेत्रोविच चेलिशेव : 'सूर्यकांत त्रिपाठी निराला' (हिन्दी में अनूदित), राजपाल एण्ड संस प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981

14- रजनीपाम दत्त : 'आज का भारत (हिन्दी अनुवाद), ' मेकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977

15- राजकुमार सैनी : 'साहित्य स्रष्टा निराला, ' पिपुल्स लिटरेसी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981

16- रामविलास शर्मा : 'निराला की साहित्य-साधना,' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
भाग-1, तृतीय संस्करण, 1979 ई०
भाग-2, द्वितीय संस्करण, 1981 ई०

17- रामविलास शर्मा : 'राग-विराग,' लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, अष्टम संस्करण 1983

18- रामधारी सिंह 'दिनकर' : 'संस्कृति के चार अध्याय,' उदयाचल प्रकाशन, पटना, तृतीय संस्करण, 1962 ई०

19- राम रत्न भटनागर : 'निराला नवमूल्यांकन,' स्मृति प्रकाशन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1973 ई०

20- रैल्फ फाक्स : 'उपन्यास और लोक-जीवन' (हिन्दी अनुवाद), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1980 ई०

21- लक्ष्मीनारायण लाल : 'हिन्दी कथनियों की शिल्प-विधि का विकास,' साहित्य भवन लिमिटेड प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1953 ई०

22- हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास,' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982 ई०

23- हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य की भूमिका,' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1979